



# मजदूर बिगुल

नरेन्द्र मोदी – यानी झूठ बोलने की मशीन के नये कारनामे **7**

बिना क्रान्ति जाति उन्मूलन सम्भव नहीं, बिना जाति विरोधी संघर्षों के क्रान्ति सम्भव नहीं! **6**

"हम लूटमार नहीं, क्रान्ति करने आये हैं!" **16**

## पाँच राज्यों में एक बार फिर विकल्पहीनता का चुनाव :

### मजदूर वर्ग के स्वतन्त्र पक्ष के क्रान्तिकारी प्रतिनिधित्व का सवाल

पाँच राज्यों में विधानसभा चुनावों की शुरुआत हो चुकी है। ये शब्द लिखे जाने तक पंजाब, उत्तराखण्ड और गोवा में वोट पड़ चुके हैं और उत्तर प्रदेश में भी दो चरणों की वोटिंग हो चुकी है। हमसे फिर से चुनने के लिए कहा गया है। अगले पाँच वर्षों के लिए इन राज्यों में पूँजीपति वर्ग के मामलों का प्रबन्धन कौन करेगा, यह तय करने के लिए फिर से हमें चुनने के लिए कहा जा रहा है। पिछले 65 वर्षों में राज्यों के विधानसभा चुनावों और संसदीय चुनावों में वास्तव में इसी बात का फ़ैसला होता आया है कि अगले पाँच वर्षों तक पूँजीपति वर्ग की 'मैनेजिंग कमेटी' का काम पूँजीपति वर्ग की कौन-सी पार्टी करेगी। इस बार भी कुछ अलग नहीं हो रहा है। इन चुनावों में तमाम चुनावी पूँजीवादी पार्टियों के बीच क्या समीकरण काम कर रहे हैं, उनकी बेहद संक्षेप में चर्चा करने

के बाद हम इस प्रश्न पर चर्चा करेंगे कि क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी का पूँजीवादी चुनावों में बारे में क्या रुख होना चाहिए।

#### चुनावी खेल के समीकरण

इन पाँच राज्यों के चुनावों में सबसे महत्वपूर्ण उत्तर प्रदेश का चुनाव है जो कि जनसंख्या की दृष्टि से सबसे बड़ा राज्य है। इसीलिए उत्तर प्रदेश के चुनावों को 2019 के लोकसभा चुनावों का स्टेज रिहर्सल भी कहा जा रहा है। उत्तर प्रदेश के चुनावी मैदान में एक ओर भाजपा-नीत राष्ट्रीय जनवादी गठबन्धन है तो दूसरी ओर सपा-कांग्रेस गठजोड़। दलित पहचान की चुनावी पूँजीवादी राजनीति करने वाली मायावती की बहुजन समाज पार्टी भी मजदूरी से मैदान में है। साथ ही, उत्तर प्रदेश के चुनावों में हमेशा की तरह स्थानीय टटपुँजिया दलों, स्थानीय क्षत्रपों और छुटभैया नेताओं

#### सम्पादक मण्डल

की भरमार है जो हमेशा अपने सारे विकल्प खुले रखते हैं और 'जरूरत पड़ने पर गधे को भी बाप बना लो' की गौरवशाली भारतीय टटपुँजिया राजनीतिक परम्परा पर अमल करते हैं। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में मुजफ़्फ़रनगर और शामली में दंगों और साम्प्रदायिक तनाव के कारण पैदा हुआ ध्रुवीकरण पहले से कम हुआ है, मगर फिर भी वह पूरी तरह खत्म नहीं हुआ है। भाजपा इसी साम्प्रदायिक तनाव को और भड़का कर वोटों का साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण करने के प्रयासों में लगी हुई है। क्योंकि नोटबन्दी के कारण और साथ ही जाटों को आरक्षण देने के अपने वायदे पर अमल नहीं करने के कारण साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण के कारण भाजपा के पक्ष में आये जाट वोट वापस खिसककर अजित सिंह के

राष्ट्रीय लोक दल या फिर सपा-कांग्रेस गठजोड़ की तरफ जा सकते हैं। अवध और पूर्वी उत्तर प्रदेश में भी नोटबन्दी के कारण भाजपा के वोट आधार में भारी कटौती होने की सम्भावना है। लेकिन अन्तिम समय पर सपा की आन्तरिक कलह के कारण वोटों का रुझान भाजपा की ओर जा सकता है। साथ ही, बसपा की चुनौती को भी सपा-कांग्रेस गठबन्धन कम करके नहीं आँक सकता है। अखिलेश यादव शहरों में किये अपने विकास कार्य और गाँवों में सड़क व अन्य निर्माण कार्य के आधार पर साथ ही चुनावों में मुफ्त बन्दरबाँट की घोषणाओं के बूते अपने वोट को पक्का करने का प्रयास कर रहे हैं। कई राजनीतिक विश्लेषकों का मानना है कि सपा के आन्तरिक कलह के नुकसानों के अलावा अखिलेश यादव को फ़ायदा भी मिला है। उनकी यह छवि गयी है कि सपा को गुण्डा

ताकतों और अराजकता से अखिलेश यादव ने मुक्त कर दिया है और अब अगर उन्हें सत्ता मिले तो वे तमाम विकास कार्य कर सकते हैं।

इन समीकरणों पर बहुत लम्बी बहस वास्तव में मजदूर वर्ग के लिए बहुत प्रासंगिक नहीं है। कारण यह है कि इन सभी पार्टियों का वर्ग चरित्र मजदूर-विरोधी है। हर दल, हर पार्टी, हर संगठन और हर विचारधारा व राजनीति का एक वर्ग चरित्र होता है। दूसरे शब्दों में कोई भी राजनीति और विचारधारा किसी न किसी वर्ग की सेवा करती है। ऐसे में, अगर हम उत्तर प्रदेश में चुनावी अखाड़े में उतरी तमाम पार्टियों की बात करें तो हम देख सकते हैं कि वे किन वर्गों की नुमाइन्दगी करती हैं।

कांग्रेस और भाजपा बड़े पूँजीपति वर्ग के हितों की नुमाइन्दगी करती हैं। (पेज 8 पर जारी)

### नोटबन्दी के साये में बजट और आर्थिक सर्वेक्षण: अर्थव्यवस्था की खस्ता हालत को झूठों से छिपाने और गरीबों की क्रीमत पर थैलीशाहों को फ़ायदा पहुँचाने का खेल

#### मुकेश त्यागी

1 फ़रवरी को वित्त मन्त्री अरुण जेटली ने बीजेपी सरकार का चौथा बजट पेश किया जिसके एक दिन पहले आर्थिक सर्वे प्रस्तुत किया गया। बजट के बाद टीवी चैनलों पर होने वाले बहस नामक तमाशों में 'आर्थिक विशेषज्ञों' द्वारा इस बात पर भारी प्रसन्नता जताई गयी कि मोदी-जेटली जोड़ी ने नोटबन्दी के बाद जनता के कष्टों से पसीजकर उन्हें राहत देने के लिए ख़जाने का मुँह नहीं

खोला, वित्तीय अनुशासन बनाये रखा है और अपनी मुट्ठी बिल्कुल बन्द रखी है! मतलब मजदूर-किसानों को ख़ुश करने के लिए फ़ालतू पैसा खर्च नहीं किया, बस जबानी जमा-खर्च से ही काम चला दिया। उनकी इस बहादुरी और मालिक तबक़े से वफ़ादारी पर 'बाज़ार' अर्थात् सरमायेदार तबक़ा ख़ास तौर पर फ़िदा हो गया है!

यह बजट नोटबन्दी के बाद की परिस्थिति में पेश किया गया था जिसकी

वजह से देश के अधिकांश आम मेहनतकश लोगों ने भारी परेशानी झेली थी, बड़ी तादाद में उद्योग और अन्य कारोबार में सुस्ती से बड़ी तादाद में मजदूर बेरोज़गार हुए, छोटे काम-धन्धे करने वाले गरीब लोग तबाह हुए और पहले ही 2 साल सूखा झेल चुके किसान अपनी नयी फ़सल को औने-पौने दामों पर बेचने को मजबूर हुए थे। काला धन, फ़र्जी नोट, आतंकवाद को मिटाने और कैशलेस अर्थव्यवस्था बनाने के नाम

पर की गयी नोटबन्दी के दौरान हुई इस भारी तकलीफ़ के दौरान प्रधानमन्त्री मोदी ने जनता से कहा था कि अगर वह देशहित के लिए इस परेशानी को सहन करने का त्याग करें तो देश की बहुत सी समस्याएँ हल होंगी, अर्थव्यवस्था को बहुत दूरगामी लाभ होगा और बाद का जीवन सुखद होगा। ऐसी भी ख़बरें आयी थीं कि मोदी समर्थक जनता को समझा रहे थे कि नोटबन्दी से अमीरों का जो काला धन ज़ब्त होगा उससे मोदी जी

उनके जनधन खातों में एक अच्छी रकम जमा करा देंगे। इसके साथ ही मध्य वर्ग को भी मीडिया के द्वारा टैक्स में भारी छूट मिलने के सबज़बाग़ दिखाये जा रहे थे। इसलिए इस बजट से बहुत सारे आम लोग बड़ा फ़ायदा होने की ज़बरदस्त उम्मीद लगाये हुए थे।

पर 31 जनवरी को बजट से पहले प्रस्तुत किये जाने वाले आर्थिक सर्वे में बताया गया कि नोटबन्दी के असर (पेज 10 पर जारी)

**बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!**

आपस की बात

## भोरगढ़ (दिल्ली) के मज़दूरों का नारकीय जीवन और उससे सीखे कुछ सबक

मैं पिछले दो महीने से भोरगढ़ के दिल्ली वेलिंग कम्पनी ए-280, में काम कर रहा हूँ। इसमें केबल (तार) बनता है। मैंने इन दो महीनों में ही इस इलाके में काम करने वाले मज़दूरों की जो हालत देखी वह बहुत ही खराब है। भोरगढ़ में अधिकतर प्लास्टिक लाइन की कम्पनियाँ हैं। इसके अलावा बर्तन, गत्ता, रबर, केबल आदि की फैक्ट्री है। सभी कम्पनियों में औसतन मात्र 8-10 लड़के काम करते हैं अधिकतर कम्पनियों में माल ठेके पर बनता है। छोटी कम्पनियों में मज़दूर हमेशा मालिक की नजरों के सामने होता है मज़दूर एक काम खतम भी नहीं कर पाता है कि मालिक दूसरा काम बता देता है कि अब ये कर लेना। भोरगढ़ में जितनी भी फैक्ट्रियाँ हैं उसमें अधिकतर प्रदूषण वाली (काली-पीली गन्दगी वाली) फैक्ट्रियाँ हैं। सभी कम्पनियों में धूल-मिट्टी हमेशा उड़ता रहता है। मैं जिस कम्पनी में काम करता हूँ उसमें केबल की रबर बनाने में पाउडर (मिट्टी) का इस्तेमाल होता है। मिट्टी इतनी सूखी और हल्की होती है कि हमेशा उड़ती रहती है। आंखों से उतना दिखाई तो नहीं देता किन्तु शाम को जब अपने शरीर की हालत देखते हैं तो पूरा शरीर और सिर मिट्टी से भरा होता है। नाक, मुँह के जरिये फेफड़ों तक जाता है। इस कारण मज़दूरों को हमेशा टी.वी., कैसर, पथरी जैसी गंभीर बीमारियाँ होने का खतरा बना रहता है। जो पाउडर केबल के रबर के ऊपर लगाया जाता है उससे तो हाथ पर काला-काला हो जाता है। जलन एवं खुजली होती रहती है। इन सबसे सुरक्षा के लिए सरकार ने जो नियम बना रखे हैं (दिखावटी नियम)। नाक, मुँह ढंकने के लिए कपड़े देना, हाथों के लिए दस्ताने, शाम को छुट्टी के समय गुड़ देना आदि। इनमें से किसी भी नियम का पालन मालिक, ठेकेदार नहीं करता है। सभी नियम-कानून को अपनी जेब में रखकर चलता है। मज़दूर मज़दूर को इस गन्दगी से बचने के लिए खुद कम्पनी में एक सेट पुराना कपड़ा रखना पड़ता है। और काम के समय उसी को पहनकर काम करता है। लेकिन रोज उसी गन्दे कपड़े को पहनकर काम करने

से बीमारियों का खतरा और बढ़ जाता है। एक अन्य सेंचुरियन प्रा.लि. केबल कम्पनी एफ-1775 में पता किया तो पता लगा कि इस कम्पनी के सात लोगों को टी.बी. हो चुका है। उस गन्दे कपड़े से अगर मालिक की कुर्सी या अन्य सामान साफ करिये तो कहेगा कि गन्दा करेगा क्या, साफ कपड़े से साफ करो। लेकिन मज़दूर उसी तरह के गन्दे कपड़े पहनकर रोज काम करता है।

एक तो इन कम्पनियों में लंच एवं छुट्टी का समय कोई नहीं होता है अगर लंच का समय हो गया और आप काम कर रहे हैं तो ठेकेदार कहेगा अरे आधे घंटे बाद लंच कर लेना ये काम तब तक खतम हो जायेगा। छुट्टी के समय भी उसी तरह कि इतना काम कर ले उसके बाद छुट्टी कर लेना। लेकिन अगर किसी दिन आप 10 मिनट लेट आइये तो मालिक पूरा हिसाब पूछेगा कि क्यों लेट आये। यह कम्पनी है कोई धर्मशाला नहीं। यही हालत लगभग सभी फैक्ट्रियों की है कहीं भी मज़दूरों की चिन्ता किसी मालिक, ठेकेदार को नहीं होती उसे सिर्फ मुनाफे की चिन्ता होती है।

दिल्ली सरकार इन फैक्ट्रियों को मुख्य दिल्ली से उजाड़कर भोरगढ़ में इसलिए बसायी गयी थी क्योंकि सरकार का कहना था कि इन फैक्ट्रियों से निकलने वाला धुआँ, मिट्टी एवं शोर से इन इलाकों में रहने वाले लोगों (धन्नासेठों) का स्वास्थ्य खराब हो रहा है लोगों का कई तरह की बीमारियाँ हो जाती है। इसलिए इन फैक्ट्रियों को दिल्ली के बाहरी इलाके में लगाओ। लेकिन इन्हीं फैक्ट्रियों के धूल-मिट्टी में सारा दिन काम करने वाले मज़दूरों की सरकार को कोई चिन्ता नहीं है।

कम मज़दूर होने के कारण इन फैक्ट्रियों में मालिकों से मज़दूर अपनी कोई मांग नहीं मनवा पाता। क्योंकि हमारी ताकत छोटी होती है उसमें भी एक-दो मज़दूर, फोरमैन मालिक का चमचा ही होता है। किसी चीज का विरोध करने पर मालिक तुरंत उन मज़दूरों को निकालकर नयी भर्ती ले लेता है। 5-7 मज़दूर तुरंत मिल भी जाता है। विरोध करने वाले मज़दूरों का

पैसा भी मारा जाता है। मज़दूरों के पास इतना समय भी नहीं होता कि वह यहाँ-वहाँ भाग दौड़ करे क्योंकि काम छूटने के बाद नया काम भी ढूँढना होता है क्योंकि इतनी कम तनख्वाह में मज़दूर के पास कुछ बचता नहीं है कि वह एक दिन भी बैठ कर बिताये। और ऐसे भी मज़दूरों को पता है कि भाग दौड़ करने से कोई फायदा नहीं होगा। क्योंकि सरकार, पुलिस सब मालिकों के साथ ही होते हैं।

दोस्तो, ऐसे समय में मैं कहना चाहूँगा कि हमारे पास सिर्फ एक ही रास्ता है कि खुद को संगठित करना पड़ेगा, सिर्फ एक फैक्ट्री के मज़दूरों को नहीं बल्कि उस पूरे फैक्ट्री इलाके के मज़दूरों को। हम जिस ब्लॉक में काम करते हैं या जिस इलाके में काम करते हैं उस पूरे इलाके की यूनियन, जहाँ रहते हैं उस इलाके का संगठन। जैसे पूरे ब्लॉक का यूनियन या भोरगढ़ के मज़दूरों का यूनियन या शाहपुर के मेहनतकशों का संगठन। क्योंकि जब तक हम बड़ी ताकत नहीं बनेंगे। मालिक हम लोगों की जिन्दगियों से खेलता रहेगा। अभी कम मज़दूरों का विरोध होने से मालिक असाानी से उसको बढ़ा देता है, लेकिन जब हमारी बड़ी ताकत होगी तो किसी भी एक कम्पनी से किसी मज़दूर को वे निकालने पर उस पूरे इलाके के फैक्ट्रियों के मज़दूरों का हड़ताल, विरोध प्रदर्शन करना या जिस इलाके में रहते हैं वहाँ के संगठन का उस फैक्ट्री के विरुद्ध धरना प्रदर्शन होगा तब मालिक को झुकाना आसान होगा क्योंकि जब सभी फैक्ट्रियों में हड़ताल होगा तो इतने मज़दूरों को मालिक नहीं निकाल सकता क्योंकि इतने मज़दूर उसको तुरंत कहां मिलेगा।

हमारे पास यही एक रास्ता है दोस्तो। हम कब तक यूँ ही घुट-घुटकर जीते रहेंगे, आज नहीं तो कल हमें लड़ना ही होगा तो क्यों न आज से ही शुरुआत की जाये ताकि हमारा कल और आने वाली पीढ़ी का आज खुशहाल हो सके। दोस्तो, जानवरों की तरह हजार दिन जीने से अच्छा है कि इंसान की तरह पूरे स्वाभिमान के साथ एक दिन जिया जाये।

— मुकेश (भोरगढ़)

पूँजीपतियों के पास दर्जनों अखबार और टीवी चैनल हैं। मज़दूरों के पास है

उनकी आवाज़ 'मज़दूर बिगुल'!

इसे हर मज़दूर के पास पहुँचाने में हमारा साथ दें।

“बुर्जुआ अखबार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अखबार खुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।” - लेनिन

‘मज़दूर बिगुल’ मज़दूरों का अपना अखबार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।

बिगुल के लिए सहयोग भेजिये/जुटाइये।

सहयोग कूपन भंगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिये।

मज़दूर बिगुल के लिए अपने कारखाने, दफ्तर या बस्ती की रिपोर्टें, लेख, पत्र या सुझाव

आप इन तरीकों से भेज सकते हैं:

डाक से भेजने का पता: मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

ईमेल से भेजने का पता: bigulakhbar@gmail.com

### मज़दूर बिगुल की वेबसाइट

www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं। मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर निःशुल्क पढ़ा जा सकता है।

आप इस फ़ेसबुक पेज के जरिये भी ‘मज़दूर बिगुल’ से जुड़ सकते हैं:

www.facebook.com/MazdoorBigul

### ‘मज़दूर बिगुल’ का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. ‘मज़दूर बिगुल’ व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. ‘मज़दूर बिगुल’ भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और ‘बिगुल’ देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. ‘मज़दूर बिगुल’ स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टियों के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. ‘मज़दूर बिगुल’ मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्यवाही चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुआन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर “कम्युनिस्टों” और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क्रतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. ‘मज़दूर बिगुल’ मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

बहुत से सदस्यों को ‘मज़दूर बिगुल’ नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब नहीं मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अखबार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको ‘मज़दूर बिगुल’ का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता:

मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना

डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

बैंक खाते का विवरण: Mazdoor Bigul

खाता संख्या: 0762002109003787, IFSC: PUNB0076200

पंजाब नेशनल बैंक, निशातगंज शाखा, लखनऊ

सदस्यता: वार्षिक: 70 रुपये (डाकखर्च सहित); आजीवन: 2000 रुपये  
मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं:

फ़ोन: 0522-2786782, 8853093555, 9936650658

ईमेल: bigulakhbar@gmail.com

फ़ेसबुक: www.facebook.com/MazdoorBigul

### मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006

फ़ोन: 8853093555

दिल्ली सम्पर्क : बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94, फ़ोन: 011-64623928

ईमेल : bigulakhbar@gmail.com

मूल्य : एक प्रति - ₹ 5/-

वार्षिक - ₹ 70/- (डाक खर्च सहित)

आजीवन सदस्यता - ₹ 2000/-

## ऑमैक्स के संघर्षरत मज़दूरों का संघर्ष ज़िंदाबाद !

धारूहेड़ा की ऑमैक्स कम्पनी में पिछले 15-20 सालों से काम कर रहे श्रमिकों को प्रबन्धन ने एक फ़रवरी को अचानक बिना किसी नोटिस के काम से निकाल दिया। कम्पनी प्रबन्धन ने बिना कोई कारण बताये या नोटिस दिये 344 श्रमिकों को एक साथ काम से बाहर कर दिया। यह घटना अपने आप में ऑटोमोबाइल सेक्टर के लिए कोई नयी बात नहीं है, आये दिन किसी न किसी फ़ैक्टरी-कारखाने के मालिक अपने मुनाफ़े को बढ़ाने और मज़दूरों के अधिकारों को कुचलने के लिए मनमर्जी से काम पर रखने और निकालने की चाल अपना रहे हैं। लेकिन ऑमैक्स के मज़दूरों ने चुपचाप बैठकर इस अन्याय को सहने की बजाए इसके खिलाफ़ संघर्ष का बिगुल फूँक दिया है। साथ ही उन्होंने प्रबन्धन के सामने यह भी साफ़ कर दिया है कि जब तक उनकी माँगें नहीं मानी जाती तब तक वे अपना संघर्ष जारी रखेंगे। निकाले गये लगभग 400 मज़दूरों ने डीसी रेवाड़ी के दफ़्तर के आगे प्रदर्शन किया और श्रम एवं समझौता अधिकारी के कार्यालय तक रैली निकाली। कम्पनी प्रबन्धन काम न होने की दुहाई देकर मज़दूरों को काम से निकालने की बात को जायज़ ठहरा रहा

है। उन सभी ठेकेदारों का कॉन्ट्रैक्ट ख़त्म किया जा रहा है जिन ठेकेदारों के ज़रिये श्रमिक नियुक्त किये गये थे। जबकि

में सेटलमेण्ट के वक़्त कम्पनी को इन सभी मज़दूरों को स्थायी करना पड़ता। क्योंकि 15 सालों से ठेके पर होने के

ने बड़ी चालाकी से मज़दूरों को स्थायी करने से बचने के लिए यह सब किया।

पूरे सेक्टर में मज़दूरों का ठेकेदारी



प्रथा के नाम पर भयंकर शोषण जारी है। तकरीबन हर कारखाने में मज़दूरों से स्थायी प्रकृति का काम मुख्य उत्पादन पट्टी पर करवाया जाता है किन्तु उनकी नियुक्ति ठेकेदारों के माध्यम से की जाती है और उन्हें एक स्थायी मज़दूर को मिलने वाले तमाम हक़-अधिकारों से वंचित रखा जाता है। ऑमैक्स प्रबन्धन ने सेक्टर में मौजूद किसी भी दूसरे प्रबन्धन की ही तरह तमाम श्रम क़ानूनों को ताक पर रखकर मज़दूरों को हरियाणा सरकार द्वारा घोषित न्यूनतम वेतन (जोकि पहले से भी बहुत कम है) न देने की प्रथा को जारी रखा है। इसके खिलाफ़ मज़दूरों ने कोर्ट में अपील दायर की जिसकी कार्यवाही के तहत 30 जनवरी को प्रबन्धन को पिछले 1 जुलाई

असली मामला कुछ और ही है। श्रमिकों का कहना है कि प्रबन्धन उन्हें इसलिए निकाल रहा है क्योंकि आगामी अप्रैल

बावजूद ये लोग मुख्य उत्पादन पट्टी पर कार्यरत होने के कारण स्थाई किये जाने के दावेदार हो जाते। कम्पनी प्रबन्धन

खिलाफ़ मज़दूरों ने कोर्ट में अपील दायर की जिसकी कार्यवाही के तहत 30 जनवरी को प्रबन्धन को पिछले 1 जुलाई

से बकाया समेत भुगतान करने का नोटिस दिया। इसके पहले भी मज़दूरों ने इस अन्याय के खिलाफ़ 10 फ़रवरी 2016 को एक दिन की हड़ताल की थी। इसमें उनके समर्थन में ऑमैक्स ग्रुप के ही अन्य कारखानों के मज़दूरों ने साथ दिया था। ऑमैक्स कम्पनी से निकाले गये मज़दूरों ने 8 फ़रवरी को फ़ैक्टरी गेट से 100 मीटर दूर अपनी सभा चलायी और फ़ैक्टरी के भीतर काम कर रहे मज़दूर साथियों से भी उनके संघर्ष का समर्थन करने का आह्वान किया। जो आज फ़ैक्टरी गेट के बाहर खड़े मज़दूरों के साथ हो रहा है वो कल को फ़ैक्टरी के भीतर काम कर रहे श्रमिकों से साथ भी होगा। और यह हालात सिर्फ़ ऑमैक्स की फ़ैक्टरी के मज़दूरों तक सीमित नहीं है बल्कि पूरे गुडगाँव-धारूहेड़ा-बवाल औद्योगिक पट्टी में काम कर रहे हर मज़दूर की यही कहानी है। ठेके पर सालों साल खटने के बाद जब स्थायी करने और बढ़ा हुआ वेतन और बाक़ी सब सहूलतें देने का समय आता है तो फ़ैक्टरी प्रबन्धन बड़ी आसानी से ठेका प्रथा का फ़ायदा उठाते हुए मज़दूरों के प्रति अपनी सारी ज़िम्मेदारियों से हाथ धो लेते हैं।

— बिगुल प्रतिनिधि

## अधिक से अधिक मुनाफ़े के लालच में मज़दूरों की ज़िन्दगियों के साथ खिलवाड़ करते कारखाना मालिक

पिछले दिनों कुछ औद्योगिक मज़दूरों के साथ मुलाक़ात हुई जिनके काम करते समय हाथों की उँगलियाँ कट गयीं या पूरे-पूरे हाथ ही कट गये। लुधियाना के औद्योगिक इलाक़े में अक्सर ही मज़दूरों के साथ हादसे होते रहते हैं। शरीर के अंग कटने से लेकर मौत तक होना आम बात बन चुकी है। मज़दूर के साथ हादसा होने पर कारखाना मालिकों का व्यवहार मामले को रफ़ा-दफ़ा करने वाला ही होता है। बहुत सारे मसलों में तो मालिक मज़दूरों का इलाज तक नहीं करवाते, मुआवज़ा देना तो दूर की बात है।

क्रान्तिकारी अख़बार 'मज़दूर बिगुल' का प्रचार करते समय ढण्डारी, लुधियाना के गणपति चौक में एक मज़दूर औरत के साथ मुलाक़ात हुई। इस औरत की बाएँ हाथ की दोनों बड़ी उँगलियाँ काम करते हुए मशीन में आ जाने के कारण कट गयीं हैं। फ़ोकल प्वाइंट फेज़-7 में साइकिल के पुर्जे बनाने वाले इस कारखाने का नाम उस औरत ने रौटर बताया जिसमें वह साल भर से काम कर रही है। हेलपर के रूप में भर्ती हुई इस औरत को प्रबन्धकों की ओर से मशीन चलाने के लिए दबाव डाला गया, जिस कारण यह हादसा हुआ। कारखाने में लगभग 150 मज़दूर काम करते हैं जिनमें तीन औरतें हैं। यहाँ मज़दूरों को श्रम क़ानूनों के अनुसार कोई अधिकार नहीं मिलता। यह हादसा होने पर बाक़ी मज़दूरों ने मालिक पर दबाव डाला तो इस औरत का ईएसआई



कार्ड बनाया गया। लेकिन अब महीना बीतने पर मालिक ने कोई मुआवज़ा या आर्थिक सहायता नहीं की, ज़ख्मी हालत में भी काम करने के लिए कारखाने बुलाया जा रहा है। कारखाना मालिकों द्वारा मज़दूरों के साथ की जा रही गुण्डागर्दी का पता इस बात से लगता है कि काम से हटाये जाने के डर के कारण यह औरत कारखाने का और अपना नाम नहीं बताना चाहती।

ऐसी ही घटना राम बरोश के साथ हुई। कुछ दिन पहले वह मज़दूर पुस्तकालय में आया। वह मज़दूर लुधियाना की एक टेक्सटाइल फ़ैक्टरी में पिछले एक साल से काम कर रहा था। काम करते समय उसका दाहिना हाथ मशीन में आकर कट गया। मालिक ने इलाज करवाने और मुआवज़ा देने का आश्वासन दिया लेकिन वास्तव में मालिक ने कोई मदद नहीं की और अपनी बात से पलट गया।



इस मज़दूर का ईएसआई कार्ड नहीं बना था, इसलिए उसे ब्याज़ पर पैसा लेकर इलाज करवाना पड़ रहा है। मालिक ने उसे फ़ैक्टरी आने से सख्त मना कर दिया है। अब राम बरोश बेकार और असहाय घूम रहा है।

मज़दूर बस्ती रणजीत नगर, शेरपुर में भी तुलसार इंजीनियर्स फ़ैक्टरी में काम करने वाले दो मज़दूरों से बात हुई। इसमें से एक सूर्या यादव ने बताया कि सुरक्षा के प्रबन्ध न होने और ज़्यादा माल बनाने के दबाव के चलते कारखाने में मज़दूरों को अक्सर चोटें लगती रहती हैं। सूर्या का हाथ कटने से एक महीना पहले भी एक मज़दूर की उसी फ़ैक्टरी में उँगलियाँ कट गयी थीं। इस कारखाने में भी लगभग 150 मज़दूर काम करते हैं लेकिन किसी



मज़दूर का ईएसआई कार्ड नहीं बना है। इसके चलते मज़दूरों को अपने खर्चे पर इलाज करवाना पड़ता है।

फ़ोकल प्वाइंट, फेज़-5 में बजाज संस इण्डस्ट्रीज़ लिमिटेड कम्पनी का कारखाना है, जहाँ ऑटो पार्ट्स बनते हैं। इस फ़ैक्टरी में भी अक्सर ही मशीनों में खराबी और काम के अत्यधिक बोझ के चलते उँगलियाँ और हाथ कटते रहते हैं। ऐसी घटना होने पर प्रबन्धक कोशिश करते हैं कि दूसरे मज़दूरों को इसका पता न चले।

ये तो महज़ चन्द उदाहरण हैं, लुधियाना में ऐसे हादसे आम देखने को मिलते हैं। खस्ताहाल मशीनों को ठीक न करवाने, उत्पादन बढ़ाने के लिए काम के बोझ, कुशल मज़दूरों की जगह कम वेतन पर अकुशल मज़दूरों से काम करवाने आदि कारणों से ऐसे हादसे ज़्यादा होते हैं। इस सबके पीछे एक ही कारण है - पूँजीपतियों की अधिक से अधिक मुनाफ़ा कमाने की भूख।

पूँजीपतियों का मुनाफ़ा तो बढ़ता रहता है लेकिन मज़दूर अपाहिज होते रहते हैं और कई बार तो ज़िन्दगी से भी हाथ धो बैठते हैं। कारखाने, खेत, खदानें जहाँ पर जीवन निर्वाह के लिए वस्तुओं का उत्पादन होता है पूँजीवादी व्यवस्था के अन्दर मज़दूरों के लिए ये कोई यातना शिविरों से कम नहीं है। यहाँ पर वह अपनी जान हथेली पर रखकर काम करते हैं। मालिक मज़दूरों को मशीन का पुर्जा समझते हैं, इसके खराब होने या टूटने पर उठाकर बाहर फेंक दिया जाता है और उसकी जगह नया पुर्जा (मज़दूर) फिट कर दिया जाता है।

मज़दूरों के साथ ऐसी धक्केशाहियाँ लगातार बढ़ती जा रही हैं। बहुत थोड़े मज़दूरों को ही श्रम क़ानूनों के तहत फ़ैक्टरी पहचान पत्र, हाज़िरी कार्ड, ईएसआई, ईपीएफ़, वार्षिक छुट्टियाँ, वार्षिक बोनस, बूट-वर्दी, हादसों से सुरक्षा के प्रबन्ध आदि अधिकार मिल पाते हैं। अधिकतर मज़दूरों को इन अधिकारों से वंचित रखा जा रहा है। शासन-प्रशासन हमेशा मालिकों का ही साथ देता है। ऐसी घटनाओं को रोकने के लिए मज़दूरों को खुद आगे आना होगा। मज़दूर अपनी संगठित ताक़त के दम पर ही अपनी सुरक्षा कर सकते हैं।

- राजविन्दर

## गरीबों की बस्ती ईडब्ल्यूएस कालोनी (लुधियाना) में बुरी रिहायशी परिस्थितियाँ और सरकारी व्यवस्था बेरुखी

दुनिया की खूबसूरत इमारतों का निर्माण करने वाले, अपने हाथों से मिट्टी से अनाज, पत्थरों से हीरे तराशने वाले, बंजर ज़मीन को इंसान के रहने लायक बनाने वाले सृजकों के अपने रहने की जगहों की परिस्थितियाँ बहुत भयानक हैं। दुनिया के किसी भी कोने में देख लीजिए हर जगह मज़दूरों-मेहनतकशों के साथ धक्केशाही होती है। दुनिया की ज़रूरतें पूरी करने के लिए दिन-रात एक करके अपनी जान की बाज़ी लगाकर, खतरनाक मशीनों पर अपने हाथ-पैर कटाकर काम करने वाले मज़दूर खुद सभी बुनियादी ज़रूरतों से वंचित रह जाते हैं। जिस जगह वे अपने परिवार के साथ समय बिताने व आराम करने के लिए रहे हैं वहाँ के हालात शब्दों में बयान नहीं किये जा सकते। ऐसी ही हालत लुधियाना की ईडब्ल्यूएस कालोनी (आर्थिक तौर पर कमज़ोर लोगों की कालोनी) की है।

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि यह गरीब लोगों की कालोनी है। यहाँ लोगों के घरों के सामने वाली जगहों और कूड़ा फेंकने वाली जगहों में कोई फ़र्क नज़र नहीं आता। गलियाँ किसी गन्दे तालाब से कम नहीं। लोगों के कमरों तक गन्दा पानी जाता है। यह पानी बारिश का ही नहीं बल्कि सीवरेज का भी होता है। जगह-जगह पीने वाले पानी की पाइप भी टूटी हुई हैं। अक्सर फ़र्क करना मुश्किल हो जाता है कि खड़ा पानी सीवरेज जाम के चलते है या पीने वाले पाइप के टूटने के कारण। गन्दा पानी पीने वाले पानी में मिल जाता है और बीमारियाँ फैलती हैं। पिछले दिनों गन्दगी के चलते काफ़ी

बीमारियाँ फैली हैं। कई लोगों की मौत भी हुई है। कमरों तक बदबू फैली रहती है। ऐसी जगह इंसान तो क्या पशुओं के रहने लायक भी नहीं है।

नगर-निगम प्रशासन की बात करें तो इसका लोगों की समस्याओं की तरफ़ कोई ध्यान नहीं। बिगुल मज़दूर दस्ता, टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन, स्त्री मज़दूर संगठन जैसे जनपक्षधर संगठनों के नेतृत्व में कई बार लोगों ने नगर-



निगम अफ़सरों को कालोनी की बुरी परिस्थितियों के बारे में धरना-प्रदर्शनों के ज़रिये भी जानकारी दी है लेकिन काम चलाऊ रिपेयर से नगर-निगम आगे नहीं बढ़ता। लोगों के दबाव के चलते सीवरेज में डण्डे मारकर काम चला दिया जाता है जब कि सीवरेज की सफ़ाई मशीन से करने की ज़रूरत है। जब से कालोनी बनी है कभी भी इसकी मशीनों से सफ़ाई नहीं करवाई गयी। पीने वाले पानी की टूटी हुई पाइपों पर लिफ़ाफ़े बाँधकर

मिट्टी डाल दी जाती है जबकि पाइप गल चुके हैं और इन्हें बदलने की ज़रूरत है। अगर साफ़-सफ़ाई के नियमित प्रबन्ध की बात करें तो एक भी सफ़ाई कर्मचारी पक्के तौर पर नहीं लगाया गया है। लोगों को अपने स्तर पर पैसे देकर साफ़-सफ़ाई करवानी पड़ती है। अधिकतर सीवरेज ठीक करवाने के लिए भी लोगों को पैसे खर्च करने पड़ते हैं। कालोनी के लिए कम से कम सौ पक्के सफ़ाई कर्मचारियों

की ज़रूरत है। लेकिन यहाँ नगर निगम बहुत दबाव पड़ने पर कुछ सफ़ाई कर्मचारियों को भेज देता है।

नगर निगम अफ़सर तो 'लोगों का कसूर है' कहकर पल्ला झाड़ने की कोशिश करते हैं। कभी वे कहते हैं कि लोग सफ़ाई नहीं रखते, कभी कहते हैं कि आबादी बहुत अधिक हो गयी है। लेकिन कालोनी की सफ़ाई के लिए बाकायदा सफ़ाई कर्मचारियों की पक्की ड्यूटी न लगाने और गरीबों की

समस्याओं की तरफ़ ध्यान न देने की बात को वे हमेशा टालने की कोशिश करते हैं। अगर लोग सफ़ाई नहीं रखते और आबादी पहले से अधिक हो गयी है तो क्या नगर निगम को लोगों की परवाह करनी छोड़ देनी चाहिए? लोगों में साफ़-सफ़ाई के प्रति जागरूकता फैलाने की नगर निगम की कोई ज़िम्मेदारी नहीं? वैसे तो बड़ी आबादी के मुताबिक़ भी व्यवस्था करना कोई मुश्किल काम नहीं है लेकिन वास्तव में ऐसी कोई समस्या है भी नहीं। नगर निगम के अफ़सर सरकारी व्यवस्था को दोष छिपाने के लिए जनता को दोषी ठहराते हैं।

वोट-बटोरू पार्टियाँ लोगों को तरह-तरह की बातें करके लोगों को अपने भ्रमजाल में फँसाती रहती हैं। लोग इनकी बातों में फँसकर इनसे सुधार की उम्मीदें पालने लगते हैं। पिछले दिनों पंजाब में विधानसभा चुनाव हुए हैं।

वोट-बटोरू नेताओं ने लोगों के सामने झूठ के महल खड़े किये कि अगर उन्हें वोट दिये जायेंगे तो वे लोगों के लिए सहूलतें मुहैया करवायेंगे। ईडब्ल्यूएस कालोनी के लोग भी इनके भ्रमजाल का शिकार हैं। उन्हें लगता है कि उन्होंने जिसे वोट दिया है वह नेता उनके दुख दूर करने आयेगा। लेकिन लोगों की समस्याएँ इन वोट-बटोरू पूँजीवादी पार्टियों के एजेण्डे पर नहीं हैं। चुनाव प्रचार के दौरान कई पार्टियों के लीडर

कालोनी में आये। लोगों ने उन्हें अपनी समस्याएँ बतायीं। लोगों द्वारा बात करने पर उन्होंने समस्याएँ दूर करने का वादा किया। लेकिन न तो चुनाव प्रचार से पहले ये नेता लोग जनता में दिखायी देते हैं और न ही चुनाव होने के बाद समस्याएँ बनी हुई हैं।

मज़दूर 12-14 घण्टे कारखानों में हड्डियाँ गलाते हैं। घरों पर भी औरतें-बच्चे शालों के बण्डल बनाने व कारखाने के अन्य काम घरों पर करने में व्यस्त रहते हैं। घर का गुज़ारा चलाने के लिए कमाई करने के लिए उन्हें रात-रात भर जागकर काम करना पड़ता है। रोज़ कमाकर खाने वाले लोग समय की कमी के चलते कालोनी की समस्याओं के बारे में सोचने और संघर्ष के लिए अधिक समय नहीं निकाल पाते। मकान मालिकों और किरायेदारों की एक-दूसरे से अलग रहने की मानसिकता भी काफ़ी फैली है। लोगों में एकजुटता की भावना की बड़ी कमी है।

लेकिन अगर लोगों को सच्चे जनपक्षधर संगठन लगातार जागरूक करने, लामबन्द व संगठित करने का काम करें तो लोग वोट-बटोरू पार्टियों के जाल में से बाहर आ सकते हैं, लोगों में एकजुटता की भावना पैदा की जा सकती है और जनता को बड़े स्तर पर संगठित करके संघर्षों की राह पर आगे बढ़ाया जा सकता है। अनेकों बार विभिन्न मसलों पर हुए संघर्षों में चाहे छोटे स्तर पर ही सही लोगों ने देखा है कि अगर वे एकजुट होकर संघर्ष करते हैं तो उनकी समस्याएँ हल हो सकती हैं।

- बलजीत

### स्त्री मज़दूर संगठन ने सीवरेज निकासी की समस्या हल करवाई

बीती 8 फ़रवरी को स्त्री मज़दूर संगठन द्वारा ई.डब्ल्यू.एस. कालोनी, लुधियाना में सीवरेज, पीने के पानी और साफ़-सफ़ाई की समस्याओं के बारे में मीटिंग की गयी। स्त्रियों ने नगर-निगम के खिलाफ़ रोष व्यक्त किया। ई.डब्ल्यू.एस. कालोनी में लम्बे समय से सीवरेज जाम होने और पेयजल की पाइपें लीक होनी के समस्या चल रही है। इसके बारे में इलाक़े के लोगों ने कई बार नगर-निगम कार्यालय पर शिकायत दर्ज करवाई है लेकिन ठीक से समस्या हल नहीं की जाती। सीवरेज का गन्दा पानी पेयजल वाली पाइपों में चले जाने से लोगों को बीमारियाँ लग रही हैं। लोगों भारी रोष है। इस बारे में इसी दिन बलजीत, नरिन्दर सोनी, सबिता, बिन्दरावति व चिन्तादेवी ने जोनल कमिश्नर को मिलकर माँग-पत्र भी दिया और कहा कि समस्याओं का फ़ौरी तौर पर हल किया जाये नहीं तो मज़दूर लोगों को प्रदर्शन करना पड़ेगा। जनसंघर्ष के डर से अगले ही दिन सीवरेज निकासी की समस्या ठीक कर दी गयी। लेकिन यह सिर्फ़ आंशिक जीत हुई है, असल मसला पक्के हल का है जो पानी की पाइपों के नये पाइप डालने, सीवरेज पाइपों की मशीनों से सफ़ाई, और पक्के तौर पर सफ़ाई कर्मचारी लगाने से ही हल हो सकता है। जोनल कमिश्नर ने कहा तो है कि समस्याएँ हल की जायेंगी लेकिन इतना पक्का है कि लोगों को समस्याएँ ठीक ढंग से हल करवाने के लिए एकजुट संघर्ष तो लड़ना ही पड़ेगा।

- बिगुल संवाददाता, लुधियाना

### मज़दूरों को स्वर्ग का झाँसा देकर नर्ककुंड में डाला जाता है

अनिल स्टील प्लांट कुण्डली (सोनीपत, हरियाणा) में हैं। इस कम्पनी में टावर का सामान बनता है। यहां ठेकेदारी पर काम होता है। इसमें काम करने वाले अधिकतर मज़दूर उ. प्र. बिहार और उड़ीसा के हैं। इन सब मज़दूरों को ठेकेदार फुसलाकर लाते हैं कि कम्पनी में सारी सुविधा है। दो महीने के बाद फंड कटना शुरू हो जायेगा, ई.एस.आई. कार्ड बन जायेगा। एक साल में एक बार बोनस भी मिलेगा, आठ घंटे काम करने का 5500 रु. मिलेगा और ओवर टाइम का डबल मिलेगा। 24 घंटे का काम होता है। छोटे-छोटे पुर्जे बनते हैं जितनी मर्जी हो उतना ही काम करो। रहने के लिए जगह भी मिलेगी और नाइट लगाने पर अलग से 50 रु. मिलेगा खाना खाने के लिए। इन बातों की जलेबी में गांव के वे गरीब फंस जाते हैं जिन्हें शहर की फैक्ट्रियों के बारे में उतना पता नहीं होता। ये भोले-भाले मज़दूर इन सब बातों से अपने लिए स्वर्ग की कल्पना करने लगते हैं पर इन्हें यह कहां पता होता है कि जिस स्वर्ग की तलाश में वे जा रहे हैं वह स्वर्ग नहीं नर्ककुंड है। ठेकेदार उनको वहां से लाने के लिए अपना किराया भी लगा देते हैं। पर यहां आने के साथ ही उनके स्वर्ग की कल्पना टूटने लगती है और नर्ककुंड की असलियत नज़र आने लगती है। यहां उन्हें रहने के लिए जो कमरा मिलता

है उसमें 15 से 20 मज़दूरों को रहना पड़ता है। फैक्ट्री में काम पर जाते ही उन्हें पता चलता है कि वे छोटे-छोटे पुर्जे 50 किलो से लकर 450 किलो तक के हैं। यहां जियाई का काम होता है। लोहे को तेजाब के टैंक में डालने पर जो बदबूदार तीखी दुर्गंध निकलती है वह दम घोटने वाली होती है। इससे सुरक्षा का कोई सामान नहीं दिया जाता। तेजाब के टैंक में सफ़ाई करने के बाद इन पर सिल्वर का कलर किया जाता है। प्रदूषण का शिकार होने के कारण टी.बी. दमे जैसी बीमारियों के शिकार होने लगते हैं। बहुत-से मज़दूर तो कमरतोड़ मेहनत से राहत के लिए गांजा, शराब, भांग इत्यादि का सेवन करने लगते हैं। मज़दूरी में मज़दूरों को काम करना ही पड़ता है क्योंकि उनके पास वापस जाने के लिए किराया तक नहीं होता। और ठेकेदार उनका पैसा इस हफ्ते देंगे उस हफ्ते देंगे कहकर टरकाता रहता है। जब कोई एक-दो महीने काम करने के बाद बहुत ज़िद करता है तो 4000-4200 रु. के हिसाब से उसका हिसाब बना देते हैं। ओवरटाइम डबल का तो सवाल ही नहीं पैदा होता। सिंगल रेट पर बना ओवरटाइम का पैसा लटका देते हैं। फिर दुकान से सामान, कमरा इन सबका हिसाब करने के बाद 1500 या 2000 रु. पकड़ा देते हैं। 10 या 12 दिन का पैसा रोक लेते हैं कि जब गांव

से आओगे तब मिलेगा। जब मज़दूर यह कहते हैं कि पूरा हिसाब दो अब उन्हें नहीं आना है तो या तो फिर हिसाब देने से मना कर देते हैं या दो महीने बाद ले लेना यह कहते हैं। सहज ही समझा जा सकता है कि कि दो महीने बाद कोई गांव से आयेगा तो बचे पैसे के बराबर तो किराया ही खर्च हो जायेगा। फरवरी में आनंद नाम के एक मज़दूर के पैर में चोट लग गयी तो एक बार दवाई दिला दी और 500 रु. देकर कहा गांव चले जाओ। और हिसाब नहीं दिया। इस तरह गांव से लाये गये मज़दूरों से गुलामों की तरह काम लिया जाता है। वे आते तो हैं तमाम तरह के सपने लेकर लेकिन यहां मिलता है कमरतोड़ मेहनत, नशा और बीमारी। और अक्सर कम उम्र के लड़कों को ही वे पकड़ते हैं। कुल लोग इतनी यातनाओं को झेलते हुए यह कहते थे कि सब कर्मों का फल है या ऊपर वाले की मर्जी है पर अब इन बातों में मेरा कोई विश्वास नहीं रहा क्योंकि हम अब अपनी आंखों से देख रहे हैं कि हमारा कर्म और फल सब बनाने के मालिक, ठेकेदार, सुपरवाइजर हैं जो हमारी मेहनत चूसकर इसी धरती पर अपने लिए स्वर्ग तथा हमारे लिए नर्क बनाते हैं।

- रामाधार (कुंडली, सोनीपत)

## स्वच्छता अभियान की देशव्यापी नौटंकी के बीच मुम्बई में सार्वजनिक शौचालय में गिरकर लोगों की मौत

सत्ता में आने के बाद से ही मोदी सरकार लगातार स्वच्छता अभियान का ढिंढोरा पीट रही है। हाथों में झाड़ु लेकर फ़ोटो खिंचवाने से लेकर टीवी, अखबार, रेडियो में जमकर पैसा खर्च कर विज्ञापन के माध्यम से जागरूकता फैलाने की बात हो रही है। पर असल में स्वच्छ भारत बनाने के लिए जिस चीज़ की बुनियादी ज़रूरत है उस पर कोई खर्च नहीं किया जा रहा है। मुम्बई जैसे महानगर में जहाँ 60 फ़ीसदी आबादी झुग्गी झोपड़ियों में रहती है व बुनियादी ज़रूरतों से वंचित है, वहाँ सार्वजनिक शौचालयों की हालत देखकर इसका अन्दाज़ा लगाया जा सकता है।

सार्वजनिक शौचालयों के इन्हीं जर्जर हालात का नतीजा हाल ही में मुम्बई में कई लोगों की मौत के रूप में सामने आया। बीती 3 फ़रवरी को मानखुर्द के इन्दिरानगर में एक सार्वजनिक शौचालय का फ़र्श सेप्टिक टैंक में धँस गया। उस वक़्त शौचालय में 20-25 लोग मौजूद थे। ज़्यादातर लोग उस गन्दगी में गिर पड़े। फ़ायर ब्रिगेड व पुलिस की गाड़ी लगभग एक घण्टे बाद पहुँची व तब तक इलाक़े के लोगों ने ही अपने प्रयास से अधिकांश को निकाल लिया था। पुलिस व मुख्यधारा के समाचार पत्रों ने तीन व्यक्तियों हरीश टीकेकर (उम्र 40), गणेश सोनी (40) मोहम्मद अंसारी (36) की मौत की पुष्टि की है। पर इलाक़े के लोगों के अनुसार कुल 7 व्यक्तियों की मौत हुई। 1 व्यक्ति की पहचान नहीं हो पायी (यद्यपि उसकी लाश निकाली गयी थी) व तीन व्यक्तियों को उस टैंक से निकाला ही नहीं गया। इस झुग्गी बस्ती में ऐसे भी बहुत से लोग हैं जो अकेले रहते हैं व बाहर से मज़दूरी करने आते हैं। ऐसे में ये तीन व्यक्ति कौन थे, इसकी भी पहचान नहीं हो पायी। पर

दबी जबान में कई लोगों ने यह कहा कि उस घटना के बाद से इलाक़े के तीन लोग गायब हैं।

यह शौचालय म्हाडा (महाराष्ट्र हाउसिंग एण्ड एरिया डवलपमेण्ट ऑथोरिटी) द्वारा सिर्फ़ दस साल पहले बनाया गया था। इसके निर्माण में घटिया निर्माण सामग्री के इस्तेमाल का अन्दाज़ा इसी से लगाया जा सकता है। ये जिस विधायक के फ़ण्ड से बना वो बाद में म्हाडा के चैयरमेन भी बने। ऐसे कितने ही सार्वजनिक शौचालय व मकान उन्होंने बनवाये होंगे व उनकी हालत क्या होगी, ये अन्दाज़ा लगाना कठिन नहीं है। शौचालय की जर्जर हालात के बारे में वहाँ के निवासियों ने लगातार शिकायतें भी की थीं पर जिस ठेकेदार को ये शौचालय रखरखाव के लिए ठेके पर दिया गया था, उसके कानों पर जूँ भी नहीं रेंगी। ठेकेदार को अभी हाल ही में म्हाडा से 9 लाख रुपये का भुगतान भी मरम्मत हेतु किया गया था पर वो सब भी उसकी मुनाफ़े की भेंट चढ़ गये।

जिन तीन व्यक्तियों की मौत की पुष्टि हुई है वे सब अपने घर के इकलौते कमाने वाले सदस्य थे। लोगों की मौत की ज़िम्मेदार सरकारी संस्था म्हाडा की तरफ़ से मृतकों को कोई मुआवजा भी नहीं दिया गया है। वैसे तो अभी मुम्बई में चुनावों का मौसम चल रहा है। महानगरपालिका के चुनावों के कारण गली-गली में पार्श्व पद के प्रत्याशी लोगों के आगे हाथ जोड़ रहे हैं पर सिर्फ़ मध्यम वर्ग तक के ही आगे। ग़रीब आबादी के बीच इस तरह की दुखदायी घटना होने पर भी किसी नेता मन्त्री का न पहुँचना यह बताता है कि ग़रीब आबादी की तमाम सारी राजनैतिक पार्टियों के लिए क्या अहमियत है।

### विज्ञापनों पर जमकर खर्च पर ज़रूरी कामों पर खर्चने को पैसा नहीं

नरेन्द्र मोदी सरकार के सत्ता में आते ही स्वच्छता अभियान की जो नौटंकी शुरू हुई थी, वो अभी भी जारी है। टीवी पर अमिताभ बच्चन से लेकर नोटों पर स्वच्छता अभियान का प्रचार करने पर तो जमकर लुटाया जा रहा है पर सार्वजनिक सुविधाओं पर न के बराबर खर्च किया जा रहा है। सरकार ने नवम्बर 2015 से एक विशेष टैक्स भी इस बाबत लगाया था। स्वच्छ भारत सैस नाम के इस कर से जहाँ पिछले आधे वित्त वर्ष में 3901 करोड़ रुपये जुटे वहीं इस वित्त वर्ष में लगभग 10000 करोड़ रुपया जुटेगा। इस पैसे का इस्तेमाल कर ज़रूरतमन्दों को बेहतर शौचालय सुविधा मुहैया करवायी जा सकती थी पर इस पैसे का ज़्यादातर इस्तेमाल गाँवों में शौचालय बनाने के नाम पर व विज्ञापन के लिए किया जा रहा है। एक रिपोर्ट के अनुसार ऐसे ज़्यादातर शौचालय सिर्फ़ पेपर पर बन रहे हैं हकीकत में नहीं। दिसम्बर 2015 में एक संस्था द्वारा 10 ज़िलों में किये गये एक सर्वे के अनुसार बताये गये शौचालयों में 29 प्रतिशत सिर्फ़ कागज़ों पर हैं जबकि 36 प्रतिशत इस्तेमाल किये जाने लायक ही नहीं हैं। 2014-15 में सरकार द्वारा 212.57 करोड़ रुपये विज्ञापनों पर खर्च किये गये, वहीं 2015-16 में यह खर्च बढ़कर 293.14 करोड़ हो गया।

मुम्बई शहर की बात की जाये तो यहाँ पर सार्वजनिक शौचालयों की संख्या बेहद कम है और जो हैं, उनकी हालत खस्ता है। मुम्बई शहर की कुल आबादी का साठ प्रतिशत हिस्सा झुग्गी बस्तियों में रहता है। यहाँ के 78

प्रतिशत सार्वजनिक शौचालयों में पानी की सुविधा नहीं है और 58 प्रतिशत बिजली से वंचित हैं। लोगों को पानी की व्यवस्था बाहर से ही करनी पड़ती है। बिजली न होने के कारण महिलाएँ व बच्चे इन शौचालयों का इस्तेमाल रात के समय नहीं करते हैं। इससे उनमें कई बीमारियाँ पनपती हैं। सार्वजनिक शौचालयों की संख्या इतनी कम है कि कहीं-कहीं तो 200 से ज़्यादा व्यक्तियों के ऊपर एक शौचालय है। जिस इलाक़े में दुर्घटना हुई है, वहाँ 5000 लोगों के लिए 22 शौचालय (एक यूनिट) थे। नरेन्द्र मोदी स्वच्छता अभियान के अपने भाषणों में जनता को अपना नज़रिया बदलने की सलाह देते हैं। कुछ विज्ञापन भी ऐसे आते हैं जिसमें दिखाया जाता है कि लोग मोबाइल तो इस्तेमाल करते हैं पर शौचालय इस्तेमाल नहीं करते। ऐसे विज्ञापन करने व कराने वालों को ऐसे सार्वजनिक शौचालयों में लाने की ज़रूरत है। यहाँ इतनी असहनीय बद्बू होती है कि इंसान 10 मिनट मुश्किल से रुक पायेगा। ऊपर से ऐसी दुर्घटनाएँ होने का डर। ये दुर्घटना भी कोई पहली दुर्घटना नहीं थी। इससे पहले मानखुर्द में ही मार्च 2015 में एक शौचालय के धँसने से एक महिला की मौत हुई थी, 2016 में मालाड व गोगेगाँव में दो बच्चों की इसी तरह की घटना में मौत हो गयी थी। ऐसे में अगर लोग मजबूरी में खुले में शौच करने को मजबूर हैं तो वो लोगों की गलती नहीं है बल्कि इस सरकार और व्यवस्था का नाकारापन और बेशर्मा है।

### सार्वजनिक शौचालय - एक मालदार उद्योग

मुम्बई के ज़्यादातर सार्वजनिक शौचालय बनाये तो म्हाडा या बीएमसी

द्वारा जाते हैं पर उन्हें चलाने का ठेका एनजीओ या प्राइवेट कम्पनियों को दिया गया है। बेहद ग़रीब इलाक़े में एकदम जर्जर शौचालय के लिए भी ये ठेकेदार 2, 3 से 5 रुपया चार्ज लेते हैं। पूरी मुम्बई में सार्वजनिक शौचालयों से सालाना लगभग 400 करोड़ की कमाई होती है। जाहिर है कि ये इन कम्पनियों के लिए बेहद मुनाफ़े का सौदा है जहाँ खर्च कुछ भी नहीं है और कमाई इतनी ज़्यादा है।

### कब तक सहेंगे, यूँ चुप रहेंगे

मानखुर्द के इस इलाक़े में दुर्घटना के बाद लोग आक्रोशित होकर उसी दिन बाकी लाशों को निकालने की भी माँग कर रहे थे। तब उन पर पुलिस द्वारा लाठीचार्ज किया गया। इस घटना के बाद से वो सार्वजनिक शौचालय भी बन्द है और लोग मजबूरी में 3 किलोमीटर दूर के दूसरे शौचालय में या फिर पास ही मौजूद खाड़ी में जाने को मजबूर हैं। न तो उसकी जगह नया सार्वजनिक शौचालय बनाने की बात हो रही है, न ही फ़ौरी तौर पर कोई मोबाइल शौचालय चलवाने की। आज ज़रूरत है कि यहाँ के सब लोग एकजुट होकर मृतकों के आश्रितों के लिए न सिर्फ़ मुआवजे की माँग करें बल्कि अपने इलाक़े में इस तरह की बेहद बुनियादी सुविधाएँ लागू करवाने के लिए एकजुट हों। अगर ऐसा नहीं करेंगे तो कोई भी नेता-मन्त्री आकर हमें अपने हक़-अधिकार नहीं देगा। कांग्रेस की सरकार हो या भाजपा की, वो तभी कुछ करेंगे जब जनता एकजुट होकर उन्हें मजबूर करे।

— सत्यनारायण

## कानपुर में निर्माणाधीन इमारत गिरने से कम से कम 10 मजदूरों की मौत

## पूँजीवाद की राक्षसी इमारत को ढहाकर बराबरी की नींव पर नये समाज की इमारत खड़ी करनी होगी, तभी रुकेंगे ऐसे हादसे

कानपुर के गज्जपुरवा इलाक़े में 1 फ़रवरी, 2017 को एक निर्माणाधीन बहुमंजिला इमारत अचानक ढह गयी। उस समय उसकी सातवीं मंजिल पर सलैब ढालने का काम चल रहा था। मलबे में से 10 मजदूरों के शव निकाले गये हैं और दर्जनों मजदूरों बुरी तरह घायल हुए खबर हैं।

प्रदेश में सत्तारूढ़ समाजवादी पार्टी का नेता और व्यापारी महताब आलम इस इमारत को अवैध ढंग से बनवा रहा था। कानपुर विकास प्राधिकरण ने 23 नवम्बर, 2016 को कागज़ी कार्रवाई करते हुए उसे एक नोटिस भी दिया था लेकिन न तो बिल्टिंग का काम रुका और न ही प्राधिकरण ने फिर कोई कार्रवाई की। अब यह हादसा हो जाने के बाद महताब आलम के विरुद्ध एफ़.आई.आर. दायर कर ली गयी है और जाँच के लिए दो सदस्यों की एक

टीम बना दी गयी है। इस देश में हजारों हादसों की जाँच रिपोर्टों की तरह इस रिपोर्ट का भी भविष्य पहले से तय है – प्राधिकरण के दफ़्तर में फ़ाइलों के मलबे में दफ़न हो जाना।

आरजी संख्या 628 व 646 गज्जपुरवा स्थित 387 स्क्वायर मीटर एरिया में मकान बनाने के लिए 5 दिसंबर, 2015 को मेहताब आलम ने केडीए में नक़शा दाखिल किया था। नियमानुसार भूतल और उसके ऊपर दो मंजिल तक निर्माण का नक़शा दिया गया था। लेकिन लोकेशन प्लान न दिखाने और साइट प्लान स्पष्ट न होने की वजह से केडीए ने ऑब्जेक्शन लगा दिया था। महताब आलम की तरफ से इन ऑब्जेक्शंस को दूर करने के लिए कोई जवाब नहीं लगाया, जिसके बाद केडीए अफ़सरों ने फ़ाइल बन्द कर दी। महताब आलम और उनकी बेटी

के नाम से दो और प्लानों के नक़शे जमा किये गये थे। केडीए अफ़सरों के मुताबिक ये दोनों मैप भी पास नहीं हो सके थे। एक में जमीन ग्राम समाज की होने और दूसरे में कोर्ट केस होने की वजह से ऑब्जेक्शन लगाये गये थे। मगर ये सारे ऑब्जेक्शन सिर्फ़ कागज़ पर रहे और प्राधिकरण कर नाक के नीचे सात मंजिला इमारत बनकर खड़ी हो गयी। घटिया सामग्री और जल्दबाजी में कराये गये काम के कारण उसे गिरना ही था। बिल्डर शायद सोच रहा था कि बन जाने के बाद उसे बेचकर पैसे लेकर निकल लेगा लेकिन इमारत उतनी भी नहीं चल पायी।

हादसे में घायल एक मजदूर भूपेन्द्र ने बताया कि उनकी माँ उर्मिला की मौत हो गयी और काम कर रहे भाई कृष्णादास का अभी भी अता-पता नहीं है। बड़ा भाई मुकेश अस्पताल में भर्ती

है। कई मजदूर लापता हैं। मजदूरों और उनके परिजनो ने जमकर विरोध किया मगर उनकी सुनने वाला कोई नहीं है। उन्होंने यह भी कहा कि सपा नेता के इशारे पर पुलिस ने कई शवों को गायब कर दिया है। प्रशासन की ओर से मुआवजे की कोई खबर नहीं है।

आये दिन निर्माण कार्य में होने वाली दुर्घटनाओं में मजदूरों की मौतें होती रहती हैं। कभी कांट्रेक्टर की लापरवाही के कारण तो कभी मालिक द्वारा हड़बड़ी में और अवैध तरीके से काम करवाए जाने के कारण। लेकिन मजदूरों को मुआवजे के नाम पर मिलती है केवल प्रशासन और राजनेताओं के झूठे वादे और दर-दर की ठोकें। ज़रा सोचिये, अगर कोई हवाई जहाज दुर्घटना हुई होती तो यह मामला कई दिनों तक राष्ट्रीय स्तर पर सुर्खियों में रहता और सभी मरने वालों

और घायलों के लिए लाखों रुपयों के मुआवजे का ऐलान हो चुका होता। लेकिन इस व्यवस्था में ग़रीबों और मजदूरों की जान सबसे सस्ती है।

देश में चारों ओर चल रहे अन्धाधुन्ध निर्माण में करीब तीन करोड़ मजदूर लगे हुए हैं और आये दिन वे जानलेवा दुर्घटनाओं के शिकार होते रहते हैं। लेकिन हर बार ऐसी ही कहानी दोहरायी जाती है। दरअसल, इस पूँजीवादी व्यवस्था की इमारत ही पूरी तरह सड़ चुकी है। जब मजदूरों के संघर्ष की आँधी इस राक्षसी इमारत को ढहाकर बराबरी की नींव पर नये समाज की इमारत खड़ी करेगी तभी ऐसे मजदूरों पर हो रहे इस तरह के अन्याय रुक सकेंगे।

— अभिषेक, कानपुर

# बिना क्रान्ति जाति उन्मूलन सम्भव नहीं, बिना जाति विरोधी संघर्षों के क्रान्ति सम्भव नहीं!

## ‘भारत में जाति व्यवस्था : उद्भव, विकास और उन्मूलन का सवाल’ विषय पर परिचर्चा

गत 12 फ़रवरी को हरियाणा के रोहतक शहर के ‘आईएमए हाउस’ में अखिल भारतीय जाति विरोधी मंच की ओर से ‘भारत में जाति व्यवस्था : उद्भव, विकास और उन्मूलन का सवाल’ विषय पर परिचर्चा रखी गयी। इस परिचर्चा में छात्र-युवा पत्रिका ‘मुक्तिकामी छात्रों-युवाओं का आह्वान’ व ‘मजदूर बिगुल’ अखबार के सम्पादक तथा ‘रेड पोलिमिक ब्लॉग’ के लेखक अभिनव को मुख्य वक्ता के तौर पर आमन्त्रित किया गया था। विषय परिवर्तन करते हुए दिशा छात्र संगठन के इन्द्रजीत ने बताया कि आज जाति व्यवस्था का सवाल बेहद प्रासंगिकता के साथ हमारे सामने उपस्थित है। एक ओर तो देश भर में दलित उत्पीड़न की घटनाओं में बढ़ोतरी हुई है, वहीं मध्य किसान जातियों का मौजूदा उभार भी गौरतलब है। बथानी टोला, लक्ष्मणपुर बाथे, रमाबाई नगर, जवखेड़, खैरलांजी और अब ऊना जैसी दलित विरोधी घटनाएँ हमारे समाज के लिए कोई नयी चीज़ नहीं हैं बल्कि इस तरह की घटनाओं में उत्तरोत्तर वृद्धि ही हुई है। हरियाणा का उदाहरण लें तो यहाँ भी दुलीना, गोहाना, भगाना, मिर्चपुर और सुनपेड़ जैसे भयंकर दलित विरोधी काण्ड हो चुके हैं। हरियाणा की प्रमुख मध्य किसान जाति (जाट) का भी आरक्षण के मुद्दे पर उभार हो चुका है और फ़िलहाल भी आरक्षण और कुछ इसी से जुड़े मसलों को लेकर राज्य सरकार के साथ इनकी ज़ोर आजमाइश जारी है। हरियाणा में व्यापक दलित आबादी के आर्थिक-सामाजिक हालात तो सदा से ही बुरे रहे हैं किन्तु अब लगातार सिकुड़ते रोजगार और छोटी होती जा रही कृषि जोत ने किसान जातियों के सामने भी भयंकर असुरक्षा की स्थिति पैदा कर दी है। इस प्रकार किसान जातियों का छोटा सा हिस्सा कुलक-फ़ार्मर में तब्दील हो चुका है तथा इसके पास संसाधनों का अम्बार है किन्तु इन जातियों की बड़ी आबादी के हालात बद से बदतर होते जा रहे हैं। रोजगार विहीन “विकास” के इस दौर में नौकरियाँ -2 प्रतिशत की दर से घट रही हैं, 93 प्रतिशत काम तो पहले ही निजी क्षेत्र के तहत होता है तथा सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों को लगातार निजी हाथों में सौंपा जा रहा है। ऐसे में जातीय बँटवारे को और भी मजबूत करने के लिए शोषणकारी मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था सदैव प्रयत्नशील रहती है। आज पहचान की राजनीति (आइडेण्टिटी पॉलिटिक्स) करने वाले तमाम जातियों के रंगे सियार अपनी राजनीति चमका रहे हैं और मेहनतकश जनता की व्यापक एकता में बाधा पहुँचाकर व्यवस्था के लिए सुषेण वैद्य का काम कर रहे हैं। मेहनतकश जनता

का भाईचारा स्थापित करने के लिए व्यापक जाति विरोधी आन्दोलन खड़ा करना बेहद ज़रूरी है तथा जाति विरोधी आन्दोलन खड़ा करने के लिए जाति व्यवस्था की कार्यप्रणाली (मैकेनिक्स) को सही इतिहास बोध और वैज्ञानिक नज़रिये के साथ समझना एक पूर्वशर्त है।

मुख्य वक्ता के तौर पर अपने व्याख्यान की शुरुआत करते हुए सबसे पहले अभिनव ने जाति व्यवस्था के इतिहास पर प्रकाश डाला, उन्होंने बताया कि जाति व्यवस्था भारत की विशिष्ट सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों की देन है।



उन्होंने अपनी बात में प्राचीन भारत के इतिहासकारों डी.डी. कोसाम्बी, आर.एस. शर्मा, रोमिला थापर, सुवीरा जायसवाल आदि की जाति व्यवस्था सम्बन्धित व्याख्याओं और मान्यताओं का जिक्र किया, साथ ही उन्होंने मध्यकालीन और आधुनिक भारत के प्रमुख इतिहासकारों के शोधकार्यों से भी श्रोताओं को परिचित कराया। उन्होंने आगे कहा कि जाति व्यवस्था का हरेक शासक वर्ग ने समाज में पैदा हो रहे अधिशेष को हड़पने के लिए एक औजार की तरह इस्तेमाल किया है और दूसरी ओर जाति व्यवस्था कभी स्थिर चीज़ भी नहीं रही है बल्कि उत्पादन सम्बन्धों, उत्पादन शक्तियों में हुए संघर्ष के फलस्वरूप बदलती उत्पादन पद्धतियों के परिणामस्वरूप जाति व्यवस्था में भी परिवर्तन आते रहे हैं। जाति, वर्ण और वर्ग में बराबरी का पहलू तो नहीं रहा है किन्तु संगति का पहलू ज़रूर रहा है। प्राचीन काल से ही देखा जाये तो वर्ण व्यवस्था में ही वर्ग संघर्ष को चिन्हित किया जा सकता है। आज भी यदि देखा जाये तो दलित आबादी का बहुसंख्यक हिस्सा सर्वहारा या मजदूर वर्ग में शामिल है किन्तु दूसरी तरफ़ भारत की कुल मजदूर आबादी में दलितों का प्रतिशत कम है यानि कुल मजदूर आबादी में दलित मजदूर अल्पसंख्यक हैं।

अपनी बात में अभिनव ने आगे

बताया कि प्रत्येक जाति और वर्ग अपने जन्म के समय से वर्ग संघर्ष को प्रतिबिम्बित करते हैं। समाज के दबा दिये गये वर्गों को क्रांति में रखने के लिए शोषक-शासक वर्गों ने अपने शासन और शोषण को वैधीकृत करने के लिए धार्मिक-सामाजिक तौर-तरीकों का सहारा लिया। भारत में जाति व्यवस्था यहाँ के आर्थिक-सामाजिक और राजनीतिक संघर्षों यानि कि कुल मिलाकर वर्ग संघर्षों की ही एक विशिष्ट अभिव्यक्ति है। ऐसा नहीं है कि ब्राह्मणों ने ही जाति व्यवस्था को पैदा कर दिया, क्योंकि एक बार को यदि यह मान भी लिया जाये तो इस सवाल का

भी जवाब देना पड़ेगा कि फिर ब्राह्मणों को किसने पैदा किया? यह ज़रूर है कि शोषक-शासक जमात के तौर पर और कभी-कभी इस जमात में भागीदारी के कारण ब्राह्मणवाद ने जाति व्यवस्था को वैधीकृत अवश्य किया है। शुद्धता, प्रदूषण और पितृसत्ता पर आधारित जाति व्यवस्था ने शासक वर्ग को एक वर्चस्वशील विचारधारा प्रदान की है। मौर्य, गुप्त साम्राज्य से लेकर सल्तनत और मुग़ल साम्राज्य तक और फिर औपनिवेशिक शासक वर्ग से लेकर आज़ाद भारत के शासक वर्ग तक यानि कि हर नये शासक वर्ग ने जाति व्यवस्था को अपनाया है तथा इसके साथ ही उत्पादन प्रणाली में हुए परिवर्तनों के साथ ही जाति व्यवस्था के पदानुक्रम में भी परिवर्तन आये हैं। भारत में जाति व्यवस्था में निरन्तरता और परिवर्तन के तत्व लगातार मौजूद रहे हैं, एक समय में शुद्ध की स्थिति में गिनी जाने वाली जातियाँ आज धनी किसानों की मध्य जातियों के तौर पर स्थापित हो चुकी हैं और राजनीतिक-सामाजिक तौर पर इन जातियों का उभार समय-ब-समय हमारे सामने आता भी रहता है, किन्तु यह भी उतना ही सच है कि इन जातियों में ध्रुवीकरण का पहलू नज़रन्दाज नहीं किया जा सकता। यह बात उल्लेखनीय है कि इनके भीतर भी वर्ग संघर्ष मौजूद है यानि इन उभरती किसान जातियों का भा बड़ा हिस्सा तो रसातल की जिन्दगी

बसर कर रहा है और बेहद छोटा सा हिस्सा ही ऐशोआराम में है। जाति और वर्ण व्यवस्था के स्वरूप में भी क्षेत्रीय भेद दृष्टिगोचर होते हैं, जैसे कि दक्षिण और पूर्वी भारत में जाति व्यवस्था उस प्रकार से नहीं है जिस प्रकार से वह उत्तर भारत में है।

इसके बाद अभिनव ने भारत में जाति व्यवस्था के खात्मे के लिए हुए सामाजिक आन्दोलनों और उनमें लगे अग्रणी सुधारकों पर भी विस्तारपूर्वक अपनी बात रखी। उन्होंने पेरियार, ज्योतिबा फुले और अम्बेडकर पर भी विस्तार से अपनी बात रखी, साथ ही जाति व्यवस्था के सन्दर्भ में तात्कालिक भारत के क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट आन्दोलन के भी सकारात्मक-नकारात्मक पहलुओं का भी जिक्र किया। विशेष तौर पर उन्होंने भगतसिंह और उनके साथियों की एचएसआरए की क्रान्तिकारी धारा को भी रेखांकित किया। उन्होंने बताया कि जाति व्यवस्था को मुख्य प्रश्न के तौर पर सामने लाने का काम बेशक अम्बेडकर ने किया है और इसके लिए उनके योगदान को सराहा जाना चाहिए, किन्तु जाति व्यवस्था के समाधान का रास्ता वे नहीं सुझा पाये। अम्बेडकर अपने पूरे कार्यकाल के दौरान अपनी व्यवहारवादी पहुँच और पद्धति से निर्देशित होते रहे। अमेरिकी सिद्धान्तकार और व्यवहारवादी दार्शनिक जॉन ड्युई के दर्शन में अम्बेडकर की पहुँच और पद्धति के बीज देखे जा सकते हैं, कुल मिलाकर जॉन ड्युई एक पूँजीवादी दार्शनिक थे। जाति व्यवस्था को लेकर अम्बेडकर के पास न तो सुसंगत इतिहास बोध था और न ही वे जाति उन्मूलन का रास्ता ही अपने जीवन में सुझा पाये। अंग्रेजों और ब्राह्मणवादियों के गठजोड़ को समझने की बजाय उनका मानना था कि ब्राह्मणवाद और औपनिवेशिक सत्ता में से पहले ब्राह्मणवाद को हराया जाना चाहिए जबकि असल में औपनिवेशिक सत्ता भी ब्राह्मणवाद और सामन्ती तत्वों के साथ गठजोड़ करके ही कायम थी। 1793 में ज़मींदारी भूमि व्यवस्था लागू करके तथा 1881 की जाति आधारित जनगणना ने जाति-व्यवस्था को मजबूत करने की ही भूमिका निभायी। अभिनव का कहना था कि हमें भावना की बजाय तर्क से प्रस्थान करना चाहिए और इतिहास की गतिकी को वैज्ञानिक नज़रिये के समझना चाहिए।

अन्त में पूरी बात को समेटते हुए अभिनव ने कहा कि आज तमाम जातियों की मेहनतकश जनता की एकजुटता स्थापित करके ही मौजूदा लुटेरी पूँजीवादी व्यवस्था का मुकाबला किया जा सकता है। निश्चय ही समाज में दलित जातियाँ आज सामाजिक उत्पीड़न का शिकार हैं तथा आर्थिक

रूप से भी वे अतिशोषण का शिकार हैं। दलितों के बीच का एक छोटा सा हिस्सा ही आज सत्ता में ऊपर पहुँच चुका है और सत्ता का अवलम्ब बना हुआ है। दलितों का बहुसंख्यक हिस्सा आज भी सामाजिक उत्पीड़न और आर्थिक शोषण का शिकार है जबकि दलितों के बीच से उभरे छोटे से मलाईदार तबके की बड़ी आबादी की सेहत पर बथानी टोला, लक्ष्मणपुर बाथे, भगाना, सुनपेड़, मिर्चपुर आदि जैसी भयंकर दलित विरोधी घटनाओं का कोई असर नहीं पड़ता, बल्कि इन घटनाओं का पहचान की राजनीति को उभारने के लिए ही इस्तेमाल किया जाता है। किताबों में कार्टून बनाया जाना इनके लिए “जीने-मरने” का सवाल बन जाता है किन्तु भयंकर दलित विरोधी काण्डों का कभी भी दलितों के बीच से उभरा मलाईदार तबका सड़कों पर उतरकर विरोध नहीं करता। आज सवर्ण जातियों के बीच से आने वाली बहुसंख्यक आबादी भी आर्थिक शोषण का शिकार है, शिक्षा और रोजगार उसकी पहुँच से दूर होते जा रहे हैं। जाति व्यवस्था पर चोट आज इसी रूप में की जा सकती है कि तमाम जातियों की मेहनतकश आबादी वर्ग आधारित एकजुटता स्थापित करे। मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था, जो जातिवाद का समाज की मेहनतकश जनता को बाँटने के लिए इस्तेमाल करती है, के क्रान्ति के द्वारा खात्मे का सवाल बेशक एजेण्डे पर होना चाहिए किन्तु यह भी उतना ही सच है कि व्यापक जाति विरोधी आन्दोलनों को खड़ा किये बग़ैर मेहनतकश आबादी को एकजुट नहीं किया जा सकता। तमाम जातियों से आने वाले इन्साफ़पसन्द लोगों को जातीय उत्पीड़न का विरोध करना चाहिए और जाति तोड़ो संगठन खड़े करने चाहिए। आरक्षण जैसे मुद्दों को उभारकर मेहनतकशों को बाँटे जाने के शासक वर्ग के षड्यन्त्रों का भण्डाफोड़ किया जाना चाहिए। आज पहचान की राजनीति करने वाले जातियों के अलम्बरदार मेहनतकशों की एकजुटता को तोड़ने और शासक वर्ग के फूट डालो और राज करो की नीति में सहायक की भूमिका निभा रहे हैं।

इस गहन और विस्तृत परिचर्चा के बाद प्रश्नोत्तर सत्र भी चला जोकि काफ़ी सकर्मक रहा। कुल मिलाकर परिचर्चा का आयोजन जीवन्त और सफल रहा तथा इस तरह की गतिविधियों को आगे भी जारी रखने की आवश्यकता पर बात की गयी।

- बिगुल संवाददाता, रोहतक

# नरेन्द्र मोदी – यानी झूठ बोलने की मशीन के नये कारनामे

यह तथ्य सर्व विदित है कि हमारे देश के प्रधानमंत्री सफ़ेद झूठ बोलते हैं। इन्होंने लोकसभा चुनाव प्रचार के दौरान काला धन वापस लाने और 15 लाख सबके खाते में जमा कराने का वायदा किया और इस काले धन को खत्म करने के नाम पर लागू की नोटबन्दी में 100 से ज्यादा लोगों की जान चली गयी पर काले धन का बाल भी बाँका न हुआ। फिर भी नरेन्द्र मोदी और अरुण जेटली सरीखे उनके चमचे बेशर्मी से कहे जा रहे हैं कि काले धन वालों की नींद हराम हो गयी है और पूरे देश की जनता नोटबन्दी के समर्थन में है। गंगा की सफ़ाई के नाम पर करोड़ों रुपये खर्च किये परन्तु सरकारी जाँच एजेंसी के अनुसार यह भी खोखला तथ्य था, गंगा पहले से ज्यादा प्रदूषित हुई है। मोदी के पालतू गुरुओं में से एक श्री श्री रविशंकर ने यमुना के तटों को भी बर्बाद किया है। रोज़गार, शिक्षा के नाम पर जितने भी वायदे किये गये थे, वे झूठ निकले। परन्तु मोदी जी ने इस बीच भी नये झूठ बोलने और भ्रम फैलाने के काम को जारी रखा है। रोज़गार लगातार घट रहा है परन्तु स्किल इण्डिया का प्रचार जोर-शोर से फैलाया जा रहा है। किसानों की बढ़ती आत्महत्याओं को रोकने के लिए मोबाइल ऐप लांच करना मूर्खता ही नहीं बेशर्मी भी है।

बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ के नाम पर असम में संघ द्वारा लड़कियों की तस्करी का मामला हो या किसानों को आगे बढ़ाने की बात हो, नरेन्द्र मोदी ने अपने हर वायदे के उलट हर तरफ़ बर्बादी का जो मंज़र खड़ा किया है, उसे ढँकने के लिए झूठों का अम्बार खड़ा किया गया है और पूँजीपतियों के गुलाम मीडिया के ज़रिए इन झूठों के धुआँधार प्रचार ने लोगों को ठहरकर इस पर कभी सोचने का मौक़ा ही नहीं दिया है। लेकिन यह काम क्रान्तिकारी ताक़तों का है कि इस फ़ासीवादी प्रचार का पर्दाफ़ाश किया जाये। मोदी सरकार द्वारा देशभक्ति के नाम पर जेएनयू और हैदराबाद विश्वविद्यालय में छात्रों पर पुलिसिया लाठीचार्ज और मुक़दमे दर्ज करवाये गये। नोटबन्दी के दौर में वायदा किया कि काला धन खत्म होगा और आतंकवाद रुक जायेगा परन्तु यह भी कोरा झूठ निकला। मोदी जी ने बोला कि 31 मार्च तक आरबीआई की खिड़कियों पर पुराना नोट बदला जायेगा और 31 दिसम्बर तक बैंकों और पोस्ट ऑफ़िसों में बदला जायेगा परन्तु सभी जानते हैं कि मोदी ने कितनी बेशर्मी से इस बात को भुला दिया और दर्जनों बार नये नियम घोषित किये जिसने आम गरीब जनता को भयंकर परेशानी में धकेल दिया। प्रधानमंत्री जी की डिग्री में भी गड़बड़ी है, जिस वजह से मोदी जी ने इस पर भी मौन धारण कर रखा है।

मोदी ने 15 अगस्त को लाल

किले से भी जो भाषण दिया उसमें अर्थव्यवस्था पर, किसानों की जीवनस्थिति पर ग़लत तथ्य दिये गये थे; गाँवों की बिजली के बारे में जो तथ्य दिये गये थे, वे भी ग़लत थे। पहली सरकारों के बारे में इनके सभी आँकड़े सरासर झूठ होते हैं। दरअसल जिन योजनाओं को मोदी ने 2014 में सत्ता में आने से पहले घोषाधड़ी और



जनविरोधी करार दिया था उन्हें भी अब मोदी सरकार अपनी उपलब्धियों में गिनाने का काम कर रही है। यह फ़ेहरिस्त इतनी लम्बी है कि मोदी और मोदी सरकार के झूठों पर मोटी पुस्तक लिखी जा सकती है।

दरअसल जब भी कोई नेता सत्ता में पहुँचता है तो जनता यह पाती है कि उसके वायदे झूठे थे और नेता की यारी जनता नहीं पूँजीपति के साथ है। परन्तु नरेन्द्र मोदी और उनकी सरकार ने इस मामले में 60 साल राज करने वाली कांग्रेस को पीछे छोड़ दिया है। इसके पीछे एक वजह है और वह यह कि नरेन्द्र मोदी फ़ासीवादी नेता है जिसकी फ़ासीवादी राजनीति नंगे तौर पर कारपोरेट हितों की सेवा करती है और जनता को इस लूट-खसोट से भरमाने के लिए झूठों का पहाड़ खड़ा करती है। राष्ट्रवाद का उन्माद जगाकर उन वायदों को भुलाया जा रहा है जो सरकार ने कभी किये थे। फ़ासीवादी सरकार और उसका ज़मीनी स्तर पर मौजूद काडर जो एक अनौपचारिक राज्यसत्ता की तरह काम करता है, इस झूठे प्रचार को जनता तक ले जाता है जिसमें खासतौर पर उसे निम्न मध्य वर्ग और लम्पट सर्वहारा वर्ग का समर्थन मिलता है। यही इस झूठ के सबसे बड़े समर्थक होते हैं जिनमें भक्ति पैदा हुई है।

लेकिन झूठ और झूठ में फ़र्क़ होता है। मार्क ट्वेन ने लिखा था कि झूठ तीन प्रकार के होते हैं - झूठ, मक्कारी और तथ्या। मोदी ने इन तीनों तरह के झूठ को बोलने में महारत हासिल की है। हाँ, इसमें एक खास किस्म का झूठ भी है जो मोदी जी अपने भोलेपन में बोल देते हैं। नरेन्द्र मोदी की इतिहास ज्ञान-शून्यता सभी को जाहिर है, इन्होंने ही सिकन्दर को बिहार पहुँचा दिया था और तक्षशिला को बिहार में पहुँचा दिया था, श्यामा प्रसाद मुखर्जी

को विवेकानन्द से मुखातिब करवा दिया, जबकि विवेकानन्द की मृत्यु के समय श्यामा प्रसाद मुखर्जी महज़ कुछ महीनों के थे। आज भी भाषणों में और सभाओं में नरेन्द्र मोदी ऐसी मूर्खताएँ करते रहते हैं, मसलन कभी पर्यावरण में तब्दीली को लोगों की सहनशीलता में बदलाव बताते हैं तो कभी लाल किले को लाल दरवाज़ा बोल देते हैं, और

कभी डॉक्टरों की सभा में कहते हैं कि गणेश की कथा भारत में हजारों साल पहले प्लास्टिक सर्जरी का प्रमाण है।

नरेन्द्र मोदी की मूर्खता का कारण उनका टटपुँजिया वर्ग चरित्र है और गली-कूचों में चलने वाली इस राजनीति में पारंगत प्रचारक, जिसे



गुण्डई भी पढ़ सकते हैं, की बोली है जिसे वे प्रधानमंत्री पद से बोलने लगते हैं। यह टटपुँजिया वर्ग चरित्र उनकी कई अभिव्यक्तियों में झलक जाता है, मसलन कैमरा देखते ही उनकी भाव-भंगिमा में खास किस्म का बदलाव आता है, शायद शरीर में सिहरन भी होती हो जिस वजह से अक्सर अखबारों में आये फ़ोटो में उनका चेहरा कैमरे की तरफ़ होता है। मंच पर भाषण देते हुए नरेन्द्र मोदी के नाटकीय सख़्तपन और कैमरे के आगे इस व्यवहार में साफ़ अन्तर दिखाई देता है। फ़्युहरर (हिटलर) जैसा आभा मण्डल बनाने के लिए जिस तरह से पहले से ही तय किये अन्दाज़ में हाथों को उठाना और थामे रखना और भाषण में कुछ खास जगह पर डाले गये विराम में मोदी का कैमरा प्रेम उछाल मारता रहता है। फ़ोटो स्टूडियो में घण्टों अलग-अलग

अन्दाज़ में खिंचवाए हुए फ़ोटो को तमाम प्रचारों में इस्तेमाल करना, रेलियों के आयोजन की भव्यता आदि में फ़ासीवादी राजनीति के गुण झलक जाते हैं जो राजनीति का सौन्दर्यकरण करती है।

मोदी और संघ परिवार ने अपने खाक़ में मिल चुके गुरु गोएबल्स और हिटलर से ये तरकीबें सीखी हैं। गोएबल्स ने जिस तरह से हिटलर के लिए फ़्युहरर कल्ट को रचने में भूमिका अदा की थी वह यहाँ गौर करने लायक है। उसने ही हिटलर द्वारा जर्मनी में चुनाव प्रचार से पहले की जा रही हवाई यात्राओं को "आकाश में फ़्युहरर" की संज्ञा दी थी। उसने अपने ज़माने में नयी रेडियो की तकनोलोजी का सबसे व्यापक इस्तेमाल किया और कई जगह जनता के बीच रेडियो बाँटे भी, और जहाँ रेडियो नहीं पहुँच सकता था, वहाँ लाउडस्पीकर लगवाए ताकि हिटलर का भाषण सभी लोगों के कानों तक पहुँच सके। देश के हर संस्थान में हिटलर की काडर फ़ोर्स एसएस के लोग शामिल किये गये। मीटिंग, परेड और भाषणों के भव्य आयोजनों के ज़रिये हिटलर की छवि को गढ़ा गया। यहूदियों और कम्युनिस्टों को यातना गृह में मारने के लिए आधार तैयार करने का काम इस प्रचार ने ही किया था।

मशहूर फ़िल्मकार लेनी रायफ़ेन्स्ताल द्वारा हिटलर की अलग-अलग भाव-भंगिमाओं का इस्तेमाल किया जिससे कि हिटलर की छवि को सर्वोच्च नेता के रूप में गढ़ा जा सके।

अब नरेन्द्र मोदी की प्रचार नीतियों को देखा जाये तो इनमें भयंकर समानता दिखाई देती है। मोदी के फ़्युहरर कल्ट को गढ़ने का प्रयास लगातार किया जा रहा है। सिर्फ़ रेडियो की जगह सोशल मीडिया, टीवी, रेडियो लगभग हर तकनीकी माध्यम से मोदी के नाम को लोगों तक पहुँचाया गया है। वाट्स एप, फ़ेसबुक और ट्विटर पर संघ के आईटी सेल द्वारा प्रचार व ज़ी न्यूज़, इण्डिया टीवी, दैनिक भास्कर, पंजाब केसरी सरीखे मुख्य टीवी चैनलों द्वारा प्रचार गोएबल्स का फ़ासीवादी एजेण्डा ही दिखाता है। वहीं यहूदियों की जगह मुस्लिम आबादी के खिलाफ़ चलाया

जा रहा कभी खुला तो कभी छिपा प्रचार उनके खिलाफ़ लगातार समाज में उनकी छवि गढ़ता है। मोदी के प्रचार में कुछ फ़िल्में भी बनी लेकिन वे बेहद खराब थीं। हर मीटिंग या सभा को आयोजित करने से पहले तमाम राज्यों से लोगों को बुलाया जाता है, सभा को बड़े से बड़ा करने की कोशिश की जाती है। जर्मनी में न्युरेम्बर्ग की रैली की भव्यता सरीखे योग दिवस पर मोदी की छवि को बड़ा बनाया जाता है। कांग्रेस द्वारा पिछले 60 सालों में जो प्रतीक गढ़े गये थे, उन्हें ज़रूर मोदी ने 5 साल में चुनौती दी है और असल में मोदी सरकार का मक़सद भी यही है। हिटलर और गोएबल्स की तरह प्रधानमंत्री मोदी भी ज़रूर शीशे के आगे अपने भाषण तैयार करते हैं बल्कि बाकायदा भाषणों की पुरानी वीडियो देखकर एक-एक शब्द पर जोर और चेहरे के भाव की तैयारी करते होंगे। ऐसे में उनके द्वारा फ़ासीवादी प्रचार का गोएबल्स का यह मन्त्र भी लागू किया जाता है कि एक झूठ को सौ बार दोहराने पर वह सच में तब्दील हो जाता है। गोएबल्स द्वारा रूस से युद्ध हारने की परिस्थिति में भी जर्मनी की जनता को यक्रीन दिलाना कि वे युद्ध जीत रहे हैं इसका एक प्रतीक उदाहरण है।

मोदी द्वारा शिक्षा, रोज़गार, कपड़ा, मकान के मुद्दों को गोल करके हवाई विकास का ढोल पीटना और इन्हें भारी शब्दावली वाली नीतियों के पीछे छिपाना झूठ बोलने की इस रणनीति का ही हिस्सा है। झूठ बोलना नरेन्द्र मोदी की ऐतिहासिक नियति है। यह झूठ और पाखण्ड के पहाड़ पर खड़े होकर ही अपनी सत्ता चला सकता है। हमने मोदी के सिर्फ़ प्रचार तन्त्र की यह तस्वीर इसलिए पेश की है, ताकि यह समझा जा सके कि फ़ासीवाद किस तरह प्रचार तन्त्र को काम में लेता है और झूठ बोलने को एक नियम की तरह इस्तेमाल करता है। जिस तरह यह गुरुत्व का नियम है कि पेड़ पर से सेब ज़मीन पर गिरेगा, उसी तरह यह फ़ासीवादी प्रचार का नियम है कि प्रधानमंत्री झूठ बोलेंगा। भारत के चुनावबाज नेताओं की जमात में शामिल नेताओं के तू नंगा तू नंगा के खेल से अलग मोदी का इस पटल पर किरदार बिल्कुल भिन्न है जो संसद में आता है परन्तु प्रश्नों का जवाब नहीं देता तो वहीं उसकी छवि ऐसी बनायी जाती है जो प्रश्नों से परे है। मोदी और संघ लगातार इसी छवि को स्थापित करने की कोशिश कर रहे हैं। इसके बावजूद प्रधानमंत्री मोदी झूठ बोलते रहेंगे, क्योंकि वे गोएबल्स की तरह झूठ बोलने की मशीन हैं और झूठ बोले बिना उनका काम नहीं चल सकता है।

— सनी

# पाँच राज्यों में एक बार फिर विकल्पहीनता का चुनाव : मज़दूर वर्ग के स्वतन्त्र पक्ष के क्रान्तिकारी प्रतिनिधित्व का सवाल

(पेज 1 से आगे)

कांग्रेस ही वह पार्टी है जिसने देश में और अपने शासन के मातहत रहे तमाम राज्यों में निजीकरण, उदारीकरण और भूमण्डलीकरण की नीतियों की शुरुआत की थी। 1991 में देश में और उससे भी कुछ वर्ष पहले से ही राज्यों में कांग्रेस ने इन नीतियों का श्रीगणेश कर दिया था। बताने की ज़रूरत नहीं है कि इन नीतियों के ज़रिये हम मेहनतकशों की गाढ़ी कमाई से खड़े किये गये पब्लिक सेक्टर के उपक्रमों को औने-पौने दामों पर देशी और विदेशी बड़ी पूँजी के हवाले करने की शुरुआत हुई थी। कांग्रेस इन नीतियों को अपने तथाकथित सेक्युलरिज़्म और दिखावटी उदार सामाजिक नीति के साथ लागू करती है। इन्हीं नीतियों को भाजपा ने अपनी साम्प्रदायिक फ़ासीवादी नीतियों के साथ कहीं ज्यादा तेज़ रफ़्तार से, दमनकारी रवैये के साथ और नंगे तौर पर लागू किया है। भाजपा की सामाजिक नीति अल्पसंख्यकों, दलित जातियों व औरतों के अधिकारों के प्रश्न पर कट्टरवादी, साम्प्रदायिक, ब्राह्मणवादी और पितृसत्तावादी है। यानी, यह इन समुदायों व सामाजिक संस्तरों के हकों को छीनने और उन्हें हीन मानने वाली सोच को मानती है। मौक़ा पड़ने पर कांग्रेस भी सर्वणवादियों और साम्प्रदायिक भावनाओं के तुष्टीकरण से बाज़ नहीं आती, जैसा कि 1980 के दशक में राम मन्दिर के साम्प्रदायिक फ़ासीवादी आन्दोलन के बरक्स उसने किया था। लेकिन फिर भी भाजपा एक फ़ासीवादी संगठन (राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ या आरएसएस) का चुनावी चेहरा है। मज़दूर वर्ग को अपनी तात्कालिक प्रतिरोध नीति के लिए कांग्रेस जैसी नर्म दक्षिणपन्थी उदार पूँजीवादी पार्टी और भाजपा जैसी आक्रामक फ़ासीवादी पार्टी के बीच फ़र्क़ करने की ज़रूरत है। निश्चित तौर पर, दोनों ही बड़ी पूँजी का प्रतिनिधित्व करती हैं। लेकिन बड़ी पूँजी की नुमाइन्दगी करने का उनका तरीक़ा और अन्दाज़ अलग है।

वहीं दूसरी ओर अगर हम समाजवादी पार्टी की बात करें तो यह मुख्य तौर पर गाँवों में धनी व उच्च मध्यम किसानों और शहरों में ठेकेदार, प्रापर्टी डीलर, निम्न पूँजीपति वर्ग के एक हिस्से समेत बड़े पूँजीपतियों के भी एक हिस्से की नुमाइन्दगी करती है। वोटों की खातिर यह अपने आपको मुसलमानों का सबसे बड़ा हिमायती साबित करने का प्रयास करती है और साथ ही यादवों के वोटों को अपने वोट बैंक का प्रमुख आधार बनाती है। मुजफ़्फ़रनगर दंगों में अखिलेश यादव प्रशासन द्वारा उचित हस्तक्षेप न करने और भाजपा के साम्प्रदायिक हमलों से अल्पसंख्यकों की हिफ़ाज़त न करने

के कारण मुसलमानों के बीच सपा की छवि बिगड़ी थी लेकिन हालिया दिनों में अखिलेश यादव ने उसे सुधारने का प्रयास किया है और साथ ही कांग्रेस से हाथ मिलाने से भी इसमें अखिलेश यादव को मदद मिली है। जहाँ तक बसपा का प्रश्न है तो वह मुख्य तौर पर अस्मितावादी राजनीति के ज़रिये दलित वोटों को बटोरने पर ज़ोर देती है। लेकिन साथ ही सतीश चन्द्र मिश्रा के तौर पर इस पार्टी ने एक ब्राह्मण चेहरा भी आगे किया हुआ है जिसके बूते 2007 ब्राह्मण वोट भाजपा से खिसककर अपने पक्ष में लाने में बसपा को सफलता मिली थी। इस बार बसपा मुसलमान वोटों पर भी गिद्धदृष्टि जमाये हुए है। लेकिन वास्तव में बसपा दलित जातियों के बीच से पैदा हुए एक छोटे-से कुलीन वर्ग की नुमाइन्दगी करती है। इसके अलावा, बसपा शहरी मध्य वर्ग, मुसलमानों और उच्च जातियों के एक हिस्से के वोट पर भी निशाना साध रही है। मुख्य तौर पर, बसपा भी टटपुँजिया वर्गों, मध्य वर्ग और साथ ही पूँजीपति वर्ग के एक हिस्से की नुमाइन्दगी करने वाली पार्टी है और इसका निशाना मुख्य तौर पर 'सोशल इंजीनियरिंग' के ज़रिये दलित अस्मिता का इस्तेमाल कर दलित वोटों, सतीश चन्द्र मिश्रा की ब्राह्मण नेता की छवि का इस्तेमाल कर ब्राह्मण वोटों और मुसलमान उम्मीदवारों को पहले से ज्यादा टिकट देकर मुसलमान वोटों को हासिल करने पर है। उत्तर प्रदेश में इन विधानसभा चुनावों में यही त्रिकोणीय संघर्ष है।

लेकिन इस पूरे संघर्ष में जो भी चुनावी दल उतरे हैं, वे सभी पूँजीपति वर्ग और निम्न पूँजीपति वर्ग के किसी न किसी हिस्से की नुमाइन्दगी करते हैं। मज़दूर वर्ग का पक्ष ग़ायब है। कोई ऐसा दल नहीं है जो कि मज़दूर वर्ग के हितों की नुमाइन्दगी करता हो। कहने के लिए वामपन्थी दल हैं मिसाल के तौर पर भाकपा, माकपा और भाकपा (माले)। इन तीन प्रमुख चुनावी वामपन्थी पार्टियों ने कुछ अन्य टटपुँजिया वामपन्थी पार्टियों जैसे कि एसयूसीआई के साथ मिलकर एक मोर्चा बनाया है। इनकी हालत यह है कि इन्हें 403 सीटों पर खड़ा करने के लिए उम्मीदवार भी नहीं मिल रहे हैं। उससे भी अहम बात यह है कि ये मज़दूर वर्ग के पीठ में छुरा भोंकने वाली ग़द्दार चुनावी वामपन्थी पार्टियाँ हैं। पश्चिम बंगाल, त्रिपुरा और केरल में इनकी सरकारें हैं या रह चुकी हैं। इन सभी राज्यों में इन्होंने पूँजीपतियों की सेवा करने वाली नीतियों को लागू करने में कहीं भी अपने आपको कांग्रेस या भाजपा से पीछे नहीं सिद्ध किया। उल्टे दमनकारी होने के मामले में कई जगह ये उनसे आगे भी निकल गयीं। वास्तव में, ये संसदीय वामपन्थी पार्टियाँ छोटे

पूँजीपतियों, छोटे दुकानदारों, मँझोले व धनी किसानों की नुमाइन्दगी करने का दावा रखती हैं। मज़दूर वर्ग के वोट के लिए ये लाल झण्डे का इस्तेमाल करती हैं, लेकिन इनके झण्डों का लाल रंग वास्तव में फीका पड़ते-पड़ते अब गुलाबी हो गया है। इन पर मज़दूर वर्ग ही अब भरोसा नहीं करता है। मज़दूर वर्ग का एक छोटा-सा हिस्सा इन्हें वोट देता है, लेकिन व्यापक मज़दूर वर्ग के वोट विकल्पहीनता में कभी इस तो कभी उस खुली पूँजीवादी पार्टी को पड़ते हैं।

वैसे तो कुल वोटों का 60 से 70 फ़ीसदी पिछले कुछ संसद व विधानसभा चुनावों में वोट डालता रहा है, मगर यह मानना होगा कि इसमें खरीदे गये या फ़र्जी वोटों को हटा भी दें, तो देश के मेहनतकश वर्गों के एक अच्छे-खासे हिस्से की अभी भी पूँजीवादी संसदीय व्यवस्था में कुछ बची हुई उम्मीदें हैं। ऐसे में, पूँजीवादी चुनावों में मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी नुमाइन्दगी का ग़ायब होना और मज़दूर वर्ग का स्वतन्त्र राजनीतिक पक्ष पेश न हो पाना आज देश के क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट आन्दोलन की एक भारी कमी है। इस पर हम कुछ आगे आयेँगे।

उत्तराखण्ड में मुख्य मुकाबला भारत के बड़े पूँजीपति वर्ग की नुमाइन्दगी करने वाली दो राष्ट्रीय पार्टियों के बीच है – कांग्रेस और भाजपा। फ़िलहाल, कांग्रेस की सरकार सत्ता में है। कुछ ही माह पहले कांग्रेस की हरीश रावत सरकार को भाजपा ने गिराने का प्रयास किया था लेकिन वह प्रयास सफल नहीं हो पाया था। उत्तराखण्ड में बहुजन समाज पार्टी ने भी पिछले चुनावों में 12 प्रतिशत वोट हासिल किये थे और इस बार भी वह कई सीटों पर काफ़ी ज़ोर लगा रही है। उत्तराखण्ड राज्य बनने के बाद से ही वहाँ बारी-बारी से कांग्रेस और भाजपा की सरकारें रही हैं। इन दोनों ही पार्टियों की सरकारों ने कारपोरेट पूँजीवादी लूट के ज़रिये विकास को जो मॉडल उत्तराखण्ड में पिछले दो दशकों में लागू किया है, वह सबके सामने है। एक ओर हाइड्रोपावर परियोजनाओं को पूँजीवादी लूट के नज़रिये के साथ जिस प्रकार से लागू किया गया है, उसने उत्तराखण्ड के पूरे पारिस्थितिक सन्तुलन को बिगाड़ दिया है। प्रकृति ने मुनाफ़े की अन्धी हवस की सज़ा भी दी है। 2013 में उत्तराखण्ड में आयी बाढ़ एक प्राकृतिक विपदा नहीं थी, बल्कि बड़ी पूँजी द्वारा उत्तराखण्ड की प्राकृतिक सम्पदा की बेतहाशा लूट के कारण पैदा हुए प्राकृतिक तबाही का एक नमूना थी। इस समय भी करीब 558 हाइड्रोपावर प्रोजेक्ट जारी हैं। 5000 हेक्टेयर जंगल की ज़मीन और साथ ही तमाम उपजाऊ ज़मीनें इन

प्रोजेक्टों को दे दी गयी है। वहीं दूसरी ओर इन प्रोजेक्टों द्वारा बेरोज़गारी दूर करने के दावे खोखले साबित हुए हैं। उत्तराखण्ड राज्य में सरकारी आँकड़ों के मुताबिक करीब 20 लाख बेरोज़गार हैं जबकि 40 लाख बेरोज़गार नौकरियों की तलाश में राज्य छोड़ चुके हैं। वहीं दूसरी ओर 1100 गाँवों को निर्जन घोषित कर दिया गया है, क्योंकि नौकरियों के लिए प्रवास के कारण वहाँ कुछ बचा ही नहीं है। प्रदेश की ग़रीब और मेहनतकश जनता मेहनत और कुदरत की भारी लूट के कारण तबाहो-बरबाद है। लेकिन यहाँ भी कोई विकल्प मौजूद नहीं है। चुनावों में मज़दूर वर्ग का स्वतन्त्र क्रान्तिकारी पक्ष अनुपस्थित है। पंजाब में भी हालत कोई अलग नहीं है। वहाँ इन चुनावों में त्रिकोणीय मुकाबला होता नज़र आ रहा है। एक ओर अकाली दल-भाजपा का बेहद अलोकप्रिय हो चुका शासक गठबन्धन है। दूसरी ओर कांग्रेस पार्टी है जो कि पिछले कुछ समय से अपने कारणों से नहीं बल्कि भाजपा और अकालियों के अलोकप्रिय होते जाने के कारण उभरती जा रही है। वहीं दिल्ली में अपनी सफलता के बाद से देश के छोटे राज्यों में पहले पाँव पसारने के उद्देश्य से अरविन्द केजरीवाल की आम आदमी पार्टी पंजाब के चुनावों में हस्तक्षेप कर रही है। पंजाब में सिख धर्म की अस्मितावादी और कट्टरपन्थी राजनीति करने वाली और सिख जनता और पंजाब के विशिष्ट हितों की नुमाइन्दगी करने वाली दक्षिणपन्थी पार्टी शिरोमणि अकाली दल और राष्ट्रीय स्तर की साम्प्रदायिक फ़ासीवादी पार्टी भाजपा के बीच गठबन्धन है। यह गठबन्धन वास्तव में प्रदेश के धनी किसान व फ़ार्मर लॉबी और साथ ही बड़ी वित्तीय व औद्योगिक पूँजीपति वर्ग की नुमाइन्दगी करता है। कांग्रेस धनी किसान लॉबी के एक अपेक्षाकृत छोटे हिस्से की नुमाइन्दगी करने के साथ दलितों के वोटों पर भी निशाना साधती है। चूँकि पंजाब में दलित आबादी का हिस्सा अन्य राज्यों के मुकाबले कहीं ज्यादा है, इसलिए दलित वोट राज्य में सत्ता किसके हाथ में जायेगी यह तय करने की स्थिति में हो सकते हैं। अब आम आदमी पार्टी के रूप में तीसरे बड़े खिलाड़ी के खेल में उतरने से मुकाबला त्रिकोणीय हो गया है। 'आम आदमी पार्टी' ने पंजाब के क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट आन्दोलन और साथ ही 1980 व 1990 के दशक के अलगाववादी सिख आन्दोलन के कई भूतपूर्व तत्वों को अपने भीतर समेट लिया है। वह एक साथ सभी असन्तोषों को अभिव्यक्त करने का प्रयास कर रही है और उसका एजेण्डा और माँगपत्रक ऊपर से देखने पर योगात्मक सर्वसमावेशी जैसा, यानी,

एक साथ हर माँग को समेट लेने वाला दिखता है। लेकिन वास्तव में आम आदमी पार्टी का एजेण्डा हर जगह हर समुदाय को सन्तुष्ट करने के दावों के समुच्चय के बावजूद वास्तव में छोटी पूँजी, ग्रामीण व शहरी टटपुँजिया वर्गों, छोटे व्यापारी वर्ग आदि की सेवा करता है। यह अपने वर्ग चरित्र से ही एक टटपुँजिया पार्टी है। इस त्रिकोणीय मुकाबले में चाहे जो भी जीते, इससे पंजाब के ग़रीब मेहनतकश वर्ग को कुछ खास हासिल नहीं होने वाला है। यहाँ भी मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश आबादी को पूँजीवादी चुनावों के मंच पर कोई स्वतन्त्र क्रान्तिकारी प्रतिनिधित्व हासिल नहीं है।

गोवा में भी हालत कुछ ऐसी है। वहाँ भी कांग्रेस, भाजपा और आम आदमी पार्टी के बीच त्रिकोणीय मुकाबला हो रहा है। मणिपुर में चुनावी राजनीति के समीकरण कुछ अलग किस्म के हैं, क्योंकि मणिपुर उन राज्यों में से है जहाँ भारतीय राज्यसत्ता का दमन अपने चरम पर रहता है। वहाँ की दमित राष्ट्रीयता को अपने बुनियादी नागरिक व जनवादी अधिकारों के लिए भी इंच-इंच लड़ना पड़ता है। हम इन राज्यों में चुनावी समीकरणों के विस्तार में नहीं जायेंगे क्योंकि न तो हमारे मौजूदा विश्लेषण के लिए यह अपरिहार्य है और न ही हमारे पास इसके लिए पर्याप्त जगह और समय है। निश्चित तौर पर, आगे हम अलग से उत्तर-पूर्व के राज्यों की राजनीतिक स्थिति के बारे में लिखेंगे। लेकिन फ़िलहाल हम इस प्रश्न पर आते हैं कि मौजूदा विधानसभा चुनावों और आम तौर पर पूँजीवादी व्यवस्था में होने वाले चुनावों में मज़दूर वर्ग की अवस्थिति क्या होनी चाहिए? हमें क्या करना चाहिए?

## पूँजीवादी चुनाव और क्रान्तिकारी मज़दूर अवस्थिति

पूँजीवादी व्यवस्था और उसमें होने वाले चुनाव निश्चित तौर पर ऐतिहासिक तौर पर हमारे लिए अप्रासंगिक हो चुके हैं। कहने का अर्थ यह है कि ऐतिहासिक तौर पर वह दौर बीत गया जब पूँजीवादी जनवाद और उसके चुनाव आम मज़दूर वर्ग और मेहनतकश जनता को कुछ दे सकते थे। ऐसा केवल उस दौर में होता है जब सामन्तवाद या साम्राज्यवाद के विरुद्ध क्रान्तिकारी तरीक़े से कोई रैडिकल परिवर्तन हुआ हो, एक क्रान्तिकारी पूँजीपति वर्ग सत्ता में आया हो और वह जनवादी सुधारों को अंजाम दे रहा हो। केवल और केवल इसी दौर में पूँजीवादी जनवादी चुनाव देश-समाज की आम मेहनतकश जनता को कुछ दे सकते हैं। इसके अतिरिक्त, जैसे ही

(पेज 9 पर जारी)

# पाँच राज्यों में एक बार फिर विकल्पहीनता का चुनाव : मज़दूर वर्ग के स्वतन्त्र पक्ष के क्रान्तिकारी प्रतिनिधित्व का सवाल

(पेज 8 से आगे)

पूँजीवादी व्यवस्था अपने प्रगतिशील सकारात्मकों को पूर्ण कर एक बोझ बन जाती है, वैसे ही इसके चुनावों की भी ऐतिहासिक तौर पर प्रासंगिकता समाप्त हो जाती है। भारत में यह सकारात्मकों का पूर्ण करने वाला कोई विचारणीय दौर तो रहा भी नहीं था क्योंकि हमारे देश का एक विशिष्ट औपनिवेशिक गुलामी का इतिहास था और यहाँ आज़ादी एक समझौते के तौर पर पूँजीपति वर्ग की नुमाइन्दगी करने वाली कांग्रेस पार्टी के हाथों में आयी थी, जिसका जनता से कभी भी ज्यादा कुछ साझा रहा ही नहीं था। लेकिन इतना तय है कि आज के दौर में पूँजीवादी चुनाव क्रतई जनता के लिए कोई विकल्प पेश नहीं करते हैं। यानी, आज के दौर में पूँजीवादी जनवादी चुनाव विकल्पहीनता के चुनाव होते हैं। आज के ही चुनावी माहौल पर निगाह दौड़ा ली जाये तो यह बात साफ़ हो जाती है। चाहे आप अपने दिल को धोखा देने और तसल्ली देने की कितनी भी कोशिश करें, आप जानते हैं कि हम मज़दूरों-मेहनतकशों के लिए यह विकल्पहीनता का चुनाव होता है, जिसमें एक पार्टी या गठबन्धन की कारगुजारियों से तंग आकर हम किसी दूसरी पार्टी या गठबन्धन को वोट डाल आते हैं। हम भी जानते हैं कि इससे कोई विशेष परिवर्तन नहीं होने वाला। **लेकिन यह एक पूँजीवादी पार्टी को अपने पाँच वर्ष के शासन काल में किये गये कुकर्मों की सज़ा देने का एक तरीक़ा बन गया है। सज़ा के तौर पर जनता अगले चुनावों में दूसरे पूँजीवादी दल को वोट दे देती है; वह दल पाँच वर्ष में फिर से हमारा जीना मुहाल कर देता है, तो उसे अगले चुनावों में सज़ा देकर हम वापस पिछले पूँजीवादी दल को या किसी तीसरे पूँजीवादी दल को सत्ता सौंप देते हैं। लेकिन यह हमारे गुस्सा निकालने का एक तरीक़ा मात्र है। हम भी जानते हैं कि हमारे पास कोई वास्तविक विकल्प नहीं है। लेकिन मज़दूर वर्ग और मेहनतकश आबादी के व्यापक पिछड़े हिस्से भी हैं जिन्हें अभी भी पूँजीवादी चुनावों से कुछ उम्मीद बँधी रहती है। हालाँकि वैज्ञानिक और ऐतिहासिक विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पूँजीवादी चुनावों के ज़रिये लम्बी दूरी में व्यापक मेहनतकश जनता को कुछ हासिल नहीं होने वाला और वैज्ञानिक और ऐतिहासिक तौर पर पूँजीवादी जनवादी चुनाव अप्रासंगिक और व्यर्थ हो चुके हैं। **लेकिन क्या यह कहा जा सकता है कि राजनीतिक तौर पर पूँजीवादी व्यवस्था में चुनाव****

अप्रासंगिक हो गये हैं?

नहीं! निश्चित तौर पर क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के लिए और मज़दूर वर्ग के अल्पसंख्यक उन्नत हिस्सों के लिए पूँजीवादी चुनाव अप्रासंगिक और पुराने पड़ चुके हैं। लेकिन वैज्ञानिक और ऐतिहासिक तौर पर समाज के उन्नत क्रान्तिकारी दस्ते और तत्वों के लिए जो अप्रासंगिक और पुराना पड़ चुका है, कोई ज़रूरी नहीं कि वह देश की मेहनतकश मज़दूर आबादी की बहुसंख्या के लिए अप्रासंगिक और पुराना पड़ गया हो। वास्तव में, ऐसा हुआ भी नहीं है। देश में पिछले कुछ संसद चुनावों और विधानसभा चुनावों में वोट डालने वाले वोटों का प्रतिशत बढ़ रहा है। निश्चित तौर पर, हम इस परिघटना को शासक वर्ग द्वारा 'ब्रेन वॉश' या सम्मोहन विद्या के प्रयोग के द्वारा नहीं समझा सकते हैं। सच यह है कि भारत के 84 करोड़ सर्वहारा और अर्द्धसर्वहारा आबादी के एक अच्छे-खासे हिस्से में यदि पूँजीवादी जनवाद में कोई अटूट आस्था नहीं है, तो निश्चित तौर पर उसमें अभी भी इस पूँजीवादी जनवाद और उसके चुनावों को लेकर कुछ विभ्रम और आधा-अधूरा भरोसा बचा हुआ है। और अगर एक विशाल अल्पसंख्या भी पूँजीवादी जनवाद और चुनावों में भ्रमग्रस्त और संशयग्रस्त भरोसा रखती है या उसका विश्वास अभी पूरी तरह टूटा नहीं है, या विकल्पहीनता और आधे-अधूरे विश्वास की एक मिश्रित भावना के कारण अभी भी 65 से 70 फ़ीसदी वोट वोट डालने जाते हैं, तो यह मानना होगा कि पूँजीवादी जनवाद और उसके चुनावों के राजनीतिक स्पेस (क्षेत्र) को क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों को खाली नहीं छोड़ना चाहिए। उन्हें निश्चित तौर पर इस मंच का रणकौशल (टैक्टिक्स) के तौर पर तौर पर इस्तेमाल अपने क्रान्तिकारी लक्ष्यों की पूर्ति के रास्ते पर आगे बढ़ने के लिए करना चाहिए; उन्हें पूँजीवादी चुनावों के मंच का इस्तेमाल व्यापक जनसमुदायों की राजनीतिक शिक्षा और प्रचार के लिए करना चाहिए। निश्चित तौर पर, यदि किसी देश की क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी इस स्थिति में नहीं है कि वह पूँजीवादी चुनावों में **रणकौशल (टैक्टिक्स) के तौर पर** भागीदारी कर उनका इस्तेमाल कर सके, तो वह उसमें ग़ैर-भागीदारी का एक आरज़ी नारा देती है। **लेकिन यह निश्चित तौर पर कोई दीर्घकालिक नारा नहीं बन सकता है।** या तो जनता क्रान्तिकारी परिवर्तन के लिए तैयार होगी; शासक वर्ग अपने शासन को जारी रख पाने में अक्षम होगा; और ऐसी परिस्थिति में व्यापक मेहनतकश जनता क्रान्तिकारी पार्टी के बहिष्कार

के नारे को स्वीकार करेगी। अन्यथा, यदि जनता के व्यापक जनसमुदायों का पूँजीवादी जनवाद और उसके चुनावों में अभी भी (आधा-अधूरा और संशयग्रस्त ही सही) विश्वास है, तो उस सूरत में क्रान्तिकारी पार्टी को चुनावों में रणकौशल के तौर पर भागीदारी कर इस मंच का इस्तेमाल जनता के राजनीतिक और वैचारिक स्तरोंनयन के लिए करना चाहिए।

**दूसरी बात यह कि व्यापक मेहनतकश जनसमुदायों का जो हिस्सा अभी भी पूँजीवादी जनवाद के प्रति विभ्रमग्रस्त है और उसके प्रति एक टूटा-फूटा सा भरोसा रखता है, वह महज़ क्रान्तिकारी पार्टी के पक्षों, अख़बारों और भाषणों के ज़रिये इन विभ्रमों से आज़ाद नहीं होगा।** पूँजीवादी जनवाद की सीमाओं को प्रदर्शित केवल और केवल तभी किया जा सकता है जबकि क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी पूँजीवादी चुनावों के मंच पर एक स्वतन्त्र मज़दूर पक्ष का प्रतिनिधित्व करे (स्वतन्त्र का अर्थ है, अन्य पूँजीवादी पार्टियों व पूँजीवादी वर्गों के प्रभाव और वर्चस्व से मुक्त, न कि राजनीति और पार्टी नेतृत्व से मुक्त), उनमें **रणकौशल के तौर पर** भागीदारी करे और इसके ज़रिये क्रान्तिकारी प्रचार व उद्वेलन करने के साथ ही पूँजीवादी व्यवस्था और पूँजीवादी जनवाद की अन्तिम सीमाओं को भी उजागर कर दे। यानी, इस **रणकौशल के तौर पर भागीदारी** के ज़रिये वह यह प्रदर्शित करे कि सबसे उदार, रैडिकल व प्रगतिशील किस्म का पूँजीवादी जनवाद भी मज़दूर वर्ग के हितों को पूर्ण नहीं कर सकता; वह वास्तव में बुर्जुआ वर्ग (पूँजीपति वर्ग) का ही जनवाद होता है, चाहे वह कुछ जूठन-छाजन मज़दूर वर्ग को क्यों न दे दे; वह बेरोज़गारी और ग़रीबी से मेहनतकश आबादी को मुक्ति नहीं दिला सकता है, क्योंकि पूँजीवादी व्यवस्था को बेरोज़गार आबादी की ज़रूरत होती है। यानी, पूँजीवादी जनवाद और चुनावों की ऐतिहासिक अप्रासंगिकता और व्यर्थता को राजनीतिक तौर पर प्रदर्शित करने का रास्ता यह है कि व्यापक क्रान्तिकारी आन्दोलनों, मसलन आम हड़ताल आदि, के अलावा क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पक्ष पूँजीवादी चुनावों के क्षेत्र में भी हस्तक्षेप करे और रणकौशल के तौर पर भागीदारी करते हुए पूँजीवादी व्यवस्था और उसके पूँजीवादी जनवाद की अन्तिम सीमाओं को व्यापक मेहनतकश आबादी के समक्ष बेनकाब करे।

लेनिन ने लिखा था कि हमें क्रान्तिकारी व क्रान्तिकारी राजनीतिक कार्यों के बीच 'या' का चिन्ह नहीं लगाना चाहिए,

बल्कि 'और' शब्द का इस्तेमाल करना चाहिए। लेनिन का मानना था कि मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी आन्दोलन को एक ओर क्रान्तिकारी संघर्ष (जैसे कि आम हड़ताल) का रास्ता अख़्तियार करना चाहिए, जो कि निश्चित तौर पर ज्यादा अहम है, लेकिन यदि उसे इस रास्ते पर आगे बढ़ना है, तो उसे क्रान्तिकारी रूपों और माध्यमों (जिनमें से पूँजीवादी चुनावों में रणकौशल के तौर पर भागीदारी एक प्रमुख रूप है) का भी इस्तेमाल करना चाहिए। लेनिन बोल्शेविक पार्टी द्वारा पूँजीवादी चुनावों के बेहद सीमित पूँजीवादी जनवाद में भी बोल्शेविकों द्वारा प्रयोग का उदाहरण देते हुए बताते हैं कि व्यापक मेहनतकश जनसमुदायों को रूस में इन क्रान्तिकारी कार्यों के बग़ैर तैयार करना मुश्किल होता।

निश्चित तौर पर, क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट इस बात पर मज़बूती से भरोसा करते हैं कि मज़दूर सत्ता और समाजवादी व्यवस्था की स्थापना पूँजीवादी चुनावों के रास्ते नहीं हो सकती, क्योंकि ऐसी राज्यसत्ता की स्थापना पूँजीवादी राज्यसत्ता के ध्वंस के बिना सम्भव नहीं है। और पूँजीवादी राज्यसत्ता का अर्थ महज़ सरकार नहीं होता। वास्तव में, क्रान्तिकारी दृष्टि से सरकार पूँजीवादी राज्यसत्ता का ऐतिहासिक तौर पर कम महत्वपूर्ण हिस्सा है। पूँजीवादी राज्यसत्ता के स्थायी हिस्से हैं उसकी पुलिस, सेना, सशस्त्र बल, नौकरशाही और उसकी न्यायपालिका। वास्तव में, ये हिस्से पूँजीवादी राज्यसत्ता के असली खाने के दाँत का काम करते हैं। जैसे ही संकट के दौरों में पूँजीवादी उत्पादन सम्बन्ध ख़तरे में पड़ते हैं, वैसे ही पूँजीवादी व्यवस्था अपने असली खाने के दाँतों के साथ सामने होती है और विधायिका यानी संसद और सरकार की भूमिका गौण बन जाती है। इसलिए मज़दूर राज्यसत्ता की स्थापना और समाजवादी व्यवस्था के निर्माण के लिए समूची पूँजीवादी राज्यसत्ता के ध्वंस की अनिवार्यता पर कोई प्रश्न नहीं खड़ा किया जा सकता है। चिले में सल्वादोर अयेन्दे के नेतृत्व में जब समाजवादी पार्टी ने चुनाव जीता तो कुछ मज़दूर पक्षीय कल्याणकारी नीतियों की शुरुआत करते ही चिले के बड़े पूँजीपति वर्ग ने साम्राज्यवाद के साथ मिलकर तख़्तापलट कर दिया और सैन्य तानाशाही स्थापित कर पूँजी की नंगी तानाशाही स्थापित कर दी। ऐसा वे क्यों कर सके? क्योंकि क्रान्तिकारी आन्दोलन के ज़रिये जनता की क्रान्तिकारी पहलक़दमी खुली नहीं थी; क्योंकि जनता सशस्त्र नहीं थी; क्योंकि सत्ता और शक्ति के प्रश्न पर जनता अभी भी कमज़ोर थी; पूँजी

की जकड़बन्दी समाज में क्रायम थी, जिसके बूते सेना और पुलिस के बड़े हिस्सों को पूँजीपति वर्ग अपने साथ ले सकता था और साम्राज्यवादी सहायता से तख़्तापलट कर सकता था; जनता ने वोट डालकर समाजवादी अयेन्दे को सत्ता में पहुँचाया था, न कि सड़कों की लड़ाई लड़कर। ऐसे में, जनता ने अयेन्दे को सत्ता में वोट डालने के 'निष्क्रिय' तरीक़े से पहुँचाया था; और जब अयेन्दे के खिलाफ़ प्रतिक्रियावादी तख़्तापलट हुआ तो भी जनता का बड़ा हिस्सा निष्क्रियता के साथ, हालाँकि अफ़सोस भरी निष्क्रियता के साथ तमाशबीन बना रहा। **चिले का यह उदाहरण दिखलाता है कि लेनिन की यह शिक्षा वैज्ञानिक और ऐतिहासिक तौर पर वर्ग समाज के समूचे ऐतिहासिक दौर के लिए सही है कि क्रान्ति का प्रश्न राज्यसत्ता का प्रश्न है और राज्यसत्ता का प्रश्न वास्तविक शक्ति का प्रश्न है।** इसलिए मज़दूर राज्यसत्ता की स्थापना और समाजवादी निर्माण की शुरुआत क्रान्तिकारी रास्ते से ही हो सकती है।

**लेकिन क्या इसका यह अर्थ है कि पूँजीवादी चुनावों में रणकौशल के तौर पर भागीदारी न की जाये?** नहीं! उल्टे इसका यह अर्थ निकलता है कि जब तक जनता के व्यापक जनसमुदायों की एक विशाल अल्पसंख्या में भी पूँजीवादी जनवाद और चुनावों के प्रति कोई भरोसा बचा है, तब तक क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी को मज़दूर वर्ग के स्वतन्त्र राजनीतिक पक्ष की नुमाइन्दगी करते हुए पूँजीवादी चुनावों में रणकौशल के तौर पर भागीदारी करनी चाहिए। **रणकौशल (टैक्टिक्स) के तौर पर भागीदारी का क्या अर्थ है? इसका अर्थ यह है कि मज़दूर क्रान्ति करने, मज़दूर सत्ता स्थापित करने और समाजवाद के निर्माण की रणनीति (स्ट्रैटेजी) पूँजीवादी व्यवस्था के मातहत चुनाव में भागीदारी नहीं हो सकती है। यानी, चुनावों के ज़रिये ही मज़दूर सत्ता और समाजवाद नहीं आ सकता। यह क्रान्ति की रणनीति नहीं हो सकता है। लेकिन क्रान्ति की इस रणनीति को आगे बढ़ाने और उसके लिए जनसमुदायों को जागृत, गोलबन्द और संगठित करने के लिए महज़ क्रान्तिकारी पार्टी के पक्षों और अख़बार काफ़ी नहीं हो सकते हैं। इस रणनीति के लिए जनता को जागृत, गोलबन्द और संगठित करने के लिए क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पक्ष को पूँजीवादी जनवाद की सीमाओं और उसके ऐतिहासिक अप्रासंगिकता और व्यर्थता को व्यवहारतः प्रदर्शित (पेज 14 पर जारी)**

# नोटबन्दी के साये में बजट और आर्थिक सर्वेक्षण: अर्थव्यवस्था की खस्ता हालत को झूठों से छिपाने और ग़रीबों की क़ीमत पर थैलीशाहों को फ़ायदा पहुँचाने का खेल

(पेज 1 से आगे)

से अर्थव्यवस्था में गिरावट आयी है, कारोबार बन्द हुए हैं, श्रमिक बेरोज़गार हुए हैं, किसान और खेत मज़दूरों की आमदनी कम हुई है और इसका ऐसा असर अभी अगले साल भी जारी रहेगा तथा इसका फ़ायदा मिलने में अभी और ज़्यादा वक़्त लगेगा। आर्थिक सर्वे में सरकार ने एक नयी बात यह भी बतायी कि कालाधन, फ़र्जी नोट, आतंकवाद, कैशलेस अर्थव्यवस्था से भी ज़्यादा नोटबन्दी का बड़ा मक़सद तो मकानों/ज़मीनों की क़ीमतें कम करना था। असल में मोदी जी तो सब ग़रीबों को सस्ता घर दिलाना चाहते थे और नोटबन्दी के असर से ये क़ीमतें गिरने लगी हैं। पर इससे पहले कि हम ज़्यादा खुश हो जायें, आगे कहा गया है कि अभी कुछ समय तक मकानों की क़ीमतें गिरेंगी, लेकिन जीएसटी लागू होने के बाद फिर से बढ़ने लगेंगी।

आर्थिक सर्वे में यह भी बताया गया कि मोदी सरकार की नीतियों से अर्थव्यवस्था में बड़ी तेज़ी आयी है लेकिन बैंकों के डूबे क़र्ज़ इस साल बढ़कर पिछले साल से दोगुने हो गये हैं। सरकारी बैंकों में तो ये बढ़कर कुल दिये गये क़र्ज़ का 12% हो गये हैं। वैसे ये पूरी संख्या नहीं है क्योंकि वसूल नहीं हुए क़र्ज़ में से, जिसे बैंक बढ़े खाते में डाल देता है (राइट ऑफ़) उसे इसमें नहीं जोड़ा जाता। पहले प्रचार किया जाता था कि बैंकों के क़र्ज़ दबाने का काम ग़रीबी मिटाने के नाम पर चल रही योजनाओं में क़र्ज़ लेने वाले छोटे किसान या अन्य छोटे-मोटे काम करने वाले ग़रीब लोग करते हैं। लेकिन इस सर्वे में दी गयी जानकारी के अनुसार न चुकाये गये क़र्ज़ में से 71% हिस्सा सिर्फ़ 50 बड़ी कम्पनियों द्वारा दबाया गया है जिन्होंने औसतन प्रति कम्पनी 20 हजार करोड़ रुपये दबा लिया है। इनमें से भी सबसे बड़ी 10 कम्पनियों को देखा जाये तो उन्होंने तो प्रति कम्पनी 40 हजार करोड़ रुपये दबा लिये हैं।

लेकिन 20 या 40 हजार करोड़ रुपये क़र्ज़ दबा लेना इस व्यवस्था में कलंक और बदनामी का नहीं बड़ी 'मेहनत' का

काम समझा जाता है। इसलिए इन्हीं लोगों को आज की व्यवस्था में 'उद्यमी' कहा जाता है क्योंकि लूट-खसोट ही इस लुटेरी पूँजीवादी व्यवस्था का असली उद्यम है! और दिन-रात बेकार का काम करने वाले ग़रीब श्रमिक तो होते ही हैं काहिल, मुफ़्तखोर, मुँह जोहने वाले, तभी तो भूखे मरते हैं! अब पूँजीवादी व्यवस्था का 'इंसाफ़' का तकाजा है कि इन महान 'उद्यमियों' को इस संकट से निकलने में मदद की जाये, और भी ज़्यादा क़र्ज़ देकर। पर बैंकों के पास तो इन्हें और क़र्ज़ देने के लिए अब पूँजी ही नहीं बची तो क्या किया जाये। सर्वे में इसका भी उपाय सुझाया गया है कि रिज़र्व बैंक के पास 4 लाख करोड़ रुपये की फ़ालतू पूँजी है, उससे लेकर इसे सरकारी बैंकों को दे दिया जाये, ताकि वे इन 'उद्यमियों' को और बड़े क़र्ज़े दबा लेने का मौक़ा देकर पुरस्कृत कर सकें! जब तक ऐसा नहीं हो पा रहा है, तब तक के लिए सरकार बजट से 70 हजार करोड़ देगी, जिसमें से 25 हजार करोड़ रुपये इस वर्ष में पहले ही दिया जा चुका है। अगले दिन बजट में वित्त मन्त्री ने यह बात तुरन्त ही मानते हुए इन बैंकों को 10 हजार करोड़ रुपये की पूँजी और दे भी दी।

इस बार पेश आर्थिक सर्वे के अनुसार एक 'दिलचस्प' बात यह है कि यद्यपि देश में वस्तुओं और श्रम का एकीकृत बाज़ार है अर्थात् वस्तुएँ और श्रमिक दोनों भारी मात्रा/संख्या में इधर से उधर होते हैं फिर भी सारे आयोगों/योजनाओं, सार्वजनिक क्षेत्र के बावजूद सम्पत्ति और आमदनी की क्षेत्रीय असमानता घटने के बजाय बढ़ती ही रही है। इसीलिए हर साल औसतन 90 लाख लोग रोजी-रोटी कमाने के लिए अपने घर-बार से उजड़कर प्रवासी बन जाते हैं और यह संख्या सालाना 4.5% की दर से बढ़ रही है। यह भी बताया गया कि इनमें महिलाओं की तादाद भी ज़ोरों से बढ़ रही है, क्योंकि वस्त्र, इलेक्ट्रॉनिक्स जैसे कई उद्योग इन्हें खास तौर पर भर्ती करना चाहते हैं; इसी तरह घरेलू काम के लिए भी बड़ी संख्या में देश के कम विकसित

इलाक़ों से बड़ी संख्या में महिलाओं को भर्ती किया जाता है। लेकिन क्या इससे इनका जीवन वास्तव में सुधर रहा है? असल में देखें तो इनमें से ज़्यादातर समा जाते हैं लुधियाना, तिरुपुर, मुम्बई, दिल्ली, बेंगलोर, आदि शहरों की गन्दी, बीमारियों भरी झोंपड़पट्टियों में, जहाँ ये देश की पूरी आर्थिक वृद्धि और पूँजीपति मालिकों की बढ़ती सम्पन्नता का पूरा बोझ अपने कंधों पर उठाते हैं। यहाँ ये अक्सर हमें नज़र भी नहीं आते क्योंकि इनकी ये बस्तियाँ बहुमज़िला इमारतों और चमकते मालों के पीछे छिपी रहती हैं और लोग बहुत कम जगह में भारी तादाद में दड़बों में मुर्गियों की तरह भरे रहते हैं। 'मायानगरी' मुम्बई की 2 तिहाई जनसंख्या शहर की सिर्फ़ 8% जगह में रहती है। यहाँ हर धर्म, जाति, इलाक़े, भाषा, आदि के लोग एक ही दुर्गम हालत में भरे होते हैं, सब अपने श्रम के मूल्य की लूट के शिकार हैं।

## सबके लिए मूलभूत आय या सबके लिए जीविका का अधिकार?

आर्थिक सर्वे में एक नया विचार प्रस्तुत किया गया है सबके लिए मूलभूत आय (बेसिक इनकम) का जो अन्य सभी योजनाओं-सब्सिडी, आदि की जगह लेगी। इसके अन्तर्गत सीधे आधार से जुड़े बैंक खातों में पैसा डाला जायेगा। लम्बे समय से यह प्रचार जारी है कि आधार से जुड़े खातों में सीधे पैसा डालने से भ्रष्टाचार नहीं होगा, सरकारी सहायता ज़रूरतमन्दों तक पहुँचेगी और चोरी कम होगी। स्वयं मोदी ने दावा किया है कि सरकारी योजनाओं का सहायता का पैसा सीधे बैंक खातों में डालने से भ्रष्टाचार कम होकर 40 हजार करोड़ रुपये बचा है। लेकिन खुद केन्द्र सरकार और नीति आयोग द्वारा चण्डीगढ़, दादर नागर हवेली और पुडुचेरी में सस्ते अनाज की जगह खाते में पैसा डालने के लिए चलाये गये पायलट की रिपोर्ट इस दावे को झूठ ठहराती है। इस रिपोर्ट के अनुसार 40% मामलों में तो पैसा लाभार्थी तक

पहुँचा कि नहीं, यह कन्फ़र्म ही नहीं हुआ। आधे से कुछ कम मामलों में कुछ नहीं मिला या जितना मिलना था, उससे कम मिला और 17% को जितना मिलना था उससे ज़्यादा मिला। क्योंकि अन्य योजनाओं जैसे राशन बन्द कर दिया गया तो इन परिवारों को अनाज के बजाय पैसा मिलने में अपनी जेब से औसतन 100-200 रुपये महीना ज़्यादा ही खर्च हुआ।

आखिर आधार क्या कर सकता है? यह सिर्फ़ यही बता सकता है कि खाता किस व्यक्ति का है; लेकिन किसकी आर्थिक अवस्था कैसी है, किसको मदद मिले, किसको नहीं, कितनी मदद मिले यह तय करने और उसे सही या ग़लत व्यक्ति तक पहुँचाने का काम तो यही सरकारी अमला और स्थानीय नेता-ठेकेदार ही मिलकर करते रहेंगे! इसमें आधार और बैंक खाता क्या करेगा? दूसरी बात, असली ज़रूरत तो सभी लोगों को रोज़गार उपलब्ध कराने और उनके श्रम के बदले न्यायोचित मज़दूरी/वेतन का समय पर भुगतान करने की है। इसी तरह सबके लिए समान शिक्षा, स्वास्थ्य और आवास, आदि अन्य मूलभूत सुविधाओं का इन्तज़ाम करना भी सरकार की ज़िम्मेदारी है। बेसिक इनकम के नाम पर सरकार अपनी इस ज़िम्मेदारी से पल्ला झाड़ने की कोशिश कर रही है।

इस आर्थिक सर्वे के बाद 1 फ़रवरी को वित्त मन्त्री ने जो बजट पेश किया उसमें भारी उम्मीदें लगाये आम ग़रीब मेहनतकश लोगों को तो कुछ हासिल नहीं हुआ - न उनके रोज़गार के लिए किसी व्यवस्था की बात हुई, न जनधन खातों में कुछ मिला और न ही औने-पौने दामों फ़सल बेचने को मजबूर ग़रीब किसानों के लिए किसी राहत की बात हुई। लेकिन शेरार बाज़ार को बजट बहुत पसन्द आया है, देशी-विदेशी वित्तीय पूँजी और कॉरपोरेट्स भी खुश हैं, बजट की तारीफ़ के पुल बाँधे जा रहे हैं, बड़े सरमायेदार टीवी-अखबारों में इसे 10 में से 10 नम्बर देने लायक बजट बता रहे हैं। इन लोगों को खुश होना भी चाहिए। किसी को टैक्स में

छूट मिली है, किसी को इन्फ़्रास्ट्रक्चर के नाम पर सस्ती ज़मीन मिल गयी है, और खेती के नाम पर एग्रो प्रोसेसिंग उद्योगों को सस्ते क़र्ज़ मिल गये हैं। देश के विकास के लिए एयरपोर्ट बनाने के लिए किसानों से सस्ते दामों पर ली गयी ज़मीनों में से हवाई अड्डे चलाने वाली कम्पनियों को 50 हजार एकड़ ज़मीन दुकानें, होटल, आदि बनाने के लिए मिल गयी है।

## अमीरों को टैक्स छूट

मध्यवर्ग के मोदी भक्तों को भी 5 सौ से एक हजार रुपये महीने का आयकर छूट का टुकड़ा फेंक दिया गया है। सम्पत्ति में दीर्घावधि पूँजीगत लाभ (capital gains) का फ़ायदा भी अब 3 साल के बजाय 2 साल में ही मिलेगा, इससे भी इन्हें कुछ टैक्स बचाने का मौक़ा मिलेगा। नोटबन्दी से कुछ घायल और मोदी जी से थोड़ा असन्तुष्ट चल रहे छोटे-मझोले कॉर्पोरेट तबके के बड़े हिस्से - 50 करोड़ रुपये से कम कारोबार वाली 96% कम्पनियों - को भी कॉर्पोरेट टैक्स में 5% की छूट (30% के बजाय 25%) मिल गयी है; और यह छूट अब इन कम्पनियों को तब भी जारी रहेगी जब इनका कारोबार 50 करोड़ से ज़्यादा हो जायेगा मतलब स्थाई फ़ायदा! लेकिन इन्होंने नोटबन्दी के बाद जिन मज़दूरों की छँटनी की थी उनका क्या? उन्हें कोई राहत नहीं है। बड़े कॉर्पोरेट तो खुद सरकारी आँकड़ों के अनुसार पहले ही 30% की दर होते हुए भी 21% ही टैक्स देते हैं, वह भी जितनी आमदनी दिखाते हैं, उस पर; ग़लत इन्वॉइसिंग से जो छिपा ली जाती है, उसका तो कोई हिसाब ही नहीं।

विदेशी वित्तीय पूँजी मालिक भी खुश हैं। पोर्टफोलियो इन्वेस्टर (FPI) को अप्रत्यक्ष करों से छूट का वादा मिला है तो बैंकिंग क्षेत्र को उनके डूबे क़र्ज़ों के नाम पर सजा के बजाय इनाम अर्थात् टैक्स में छूट मिल गयी है। मोदी जी ने कैपिटल गेन्स पर टैक्स लगाने का ज़िक्र कुछ दिन पहले किया था, पर मालिकों की घुड़की के सामने वह

(पेज 12 पर जारी)

## रेलवे का किशतों में निजीकरण – घाटा पब्लिका, मुनाफ़ा प्राइवेट

रेलवे बजट को समझने के लिए परिचालन अनुपात या ऑपरेटिंग रेशो को समझना ज़रूरी है - इस वर्ष यह 95% रहा जिसका मतलब है कि 100 रुपये कमाने के लिए रेलवे ने 95 रुपये खर्च किये, जबकि पिछले बजट में इसका 92% रहने का अनुमान था। इस बजट में अगले साल के लिए इसका अनुमान ही 95% है। (हालाँकि बजट के बाद प्रकाशित खबरों के अनुसार इस वित्त वर्ष के पहले नौ महीने में रेलवे की परिचालन लागत 109 पर पहुँच गयी है, मतलब 100 रु कमाने में 109 खर्च हो रहे हैं!) कुछ साल पहले तक यह 90% से नीचे हुआ करता था। रेलवे बोर्ड के कुछ पूर्व अधिकारियों के अनुसार असल में तो यह अनुपात 100 से ऊपर हो गया है पर रेलवे बजट को आम बजट में मिलाकर खातों में पारदर्शिता कम कर इसको कम दिखाया जा रहा है। पिछले 4 साल में यात्री किराये विभिन्न तरीक़े से डेढ़ से 4 गुना तक बढ़ाये जा चुके हैं, मालभाड़ा भी बढ़ा है, टिकट कैसिल कराने, प्लेटफ़ार्म टिकट, अन्य चार्जों में भी भारी इज़ाफ़ा हुआ है। तब यह सवाल पूछा जाना ज़रूरी है कि यह सब बढ़ने के बाद रेलवे का परिचालन अनुपात घटने के बजाय बढ़ा क्यों है? एक वजह तो यह है कि मोदी सरकार ने अर्थव्यवस्था का जो बुरा हाल किया है उससे माल दुलाई काफी घट गई है। लेकिन दूसरी वजह है बहुत सारी पब्लिक-प्राइवेट पार्टनरशिप के नाम पर चोर दरवाजे से हो रहा निजीकरण जिसका मतलब होता है घाटा पब्लिक, मुनाफ़ा

प्राइवेट! यह और कुछ नहीं बस सार्वजनिक सम्पत्ति को चोरी से निजी मालिकाने में हस्तांतरित करना है, जिसमें भ्रष्टाचार की भी बड़ी भूमिका होती है।

इससे यह तो स्पष्ट है कि अभी सीधे या चोर दरवाजे से किराये और बढ़ाये जायेंगे, साधारण गाड़ियों की बजाय प्रीमियम, हमसफ़र, तेजस, आदि नाम से महँगे किराये वाली गाड़ियाँ चलायी जायेंगी, जिससे आम आदमी के लिए सफ़र करना महँगा और मुश्किल होता जायेगा। इसके अतिरिक्त रेलवे के साज़-सामान, पटरियों, सिग्नल, आदि के रखरखाव की स्थिति खराब होती जा रही है, चौकसी और साज़-सँभाल के करीब सवा लाख पद खाली पड़े हैं जिससे दुर्घटनाएँ और यात्रियों की मौतें बढ़ रही हैं। स्थिति यहाँ तक खराब है कि इस बार बगैर कोहरे के भी ज़्यादातर गाड़ियाँ विलम्ब से चल रही हैं और बड़ी संख्या में रद्द भी की गयी हैं। साधारण गाड़ियों को सुरक्षित और समय पर चला पाने में भी असमर्थ इस सरकार का सारा ध्यान बुलेट ट्रेन जैसी योजनाओं पर है जिन पर भारी खर्च होगा पर जिनका उपयोग मात्र 5% अमीर लोग ही कर पायेंगे।

रेलवे के बढ़ते निजीकरण और ठेकाकरण के साथ ही किशतों में छँटनी की प्रक्रिया भी तेज़ होती जा रही है। आने वाले समय में और भी नौकरियाँ जायेंगी, यह तय है।

# अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प की नीतियाँ और जनता का प्रतिरोध

ट्रम्प जैसे निहायत ओछे, लम्पट और नारी विरोधी व्यक्ति का विश्व-पूँजीवाद के शिखर पर आसीन होना पूँजीवाद के पतन की चरम सीमा की अभिव्यक्ति है। पतनशील पूँजीवादी व्यवस्था जनवाद और मानवता का झीना पर्दा सापेक्षिक साफ़-सुथरी छवि वाले बुर्जुआ नेता के माध्यम से अपने ऊपर जो ढँकने का प्रयास करती है, ट्रम्प जैसा लम्पट उसे खींचकर उतार फेंकता है। चुनाव प्रचार के दौरान निहायत बेहूदा नारी-विरोधी बातों, प्रवासी-विरोधी, इस्लाम-विरोधी नारों के बावजूद उसका सत्ता में आना पूरी दुनिया के लिए चौंका देने वाला था। लेकिन ढाँचागत संकट के दौर में पूँजीवाद की राजनीतिक अभिव्यक्ति के रूप में फासीवादी प्रवृत्तियों का विभिन्न रूपों में उभार कतई चौंकाने वाली बात नहीं है। अमेरिकी चुनावों के ट्रम्पीय परिणाम को इससे जोड़कर ही समझा जा सकता है।

यह तो सही है कि ट्रम्प का सत्ता में आने को अमेरिका में फासीवाद का सत्ता में आना नहीं कहा जा सकता क्योंकि ट्रम्प के पीछे कोई फासीवादी पार्टी या फासीवादी सिद्धान्त आधारित कोई आन्दोलन नहीं है। लेकिन ट्रम्प की जीत से वहाँ फासीवादी प्रवृत्तियों और तत्वों को बल मिला है। उसे सत्ता में लाने वाली रिपब्लिकन पार्टी अमेरिका में रूढ़िवादी विचारों की मुख्य प्रतिनिधि मानी जाती है। ट्रम्प ने अपने चुनाव प्रचार में जो तौर-तरीके अपनाये वे एक फासीवादी नेता के समान ही थे। उसने एक सशक्त और निर्णायक नेता की छवि प्रस्तुत की जो अमेरिका को "एक बार फिर महान" बनायेगा। जिस तरह फासीवाद किसी काल्पनिक महान इतिहास की रचना कर जनता की निराशा को अपने पक्ष में कर लेता है उसी तरह ट्रम्प ने अमेरिका को एक बार फिर महान राष्ट्र बनाने का वायदा कर बेरोजगारी, बदहाली, और गरीबी की मार झेल रही अमेरिकी जनता को सुनहरे भविष्य के सपने दिखाये। किसी महान इतिहास और उसके खो जाने के कथानक में एक दुश्मन की आवश्यकता होती है और फिर उस काल्पनिक स्वर्णिम युग का दुश्मन वर्तमान समय की समस्याओं का जिम्मेदार बन जाता है। जैसे भारत में संघी फासिस्ट मुसलमानों को दुश्मन की तरह पेश करते हैं, वैसे ही अमेरिका में ट्रम्प ने प्रवासियों पर निशाना साधा। इस दुश्मन के खिलाफ़ घोर नफ़रत पैदा कर उसे समाज के संकट का जिम्मेदार बताना ज़रूरी हो जाता है ताकि असली समस्याओं पर परदा डाला जा सके। ट्रम्प के अनुसार प्रवासी लोग अमेरिकी जनता की नौकरियाँ और संसाधन छीन लेते हैं और इसीलिए आम अमेरिकी जनता बेरोजगारी और सुविधाओं में कटौती से परेशान है।

इस परिप्रेक्ष्य से ट्रम्प और उसकी नीतियों को समझा जा सकता है। इसके अलावा पूँजीवाद के पास जनता का ध्यान मूल मुद्दों से भटकाने के लिए एक और आजमाया नुस्खा भी है,

आतंकवाद। अमेरिका जो पूरे विश्व में आतंकवाद का सबसे बड़ा जन्मदाता और संरक्षक है, वह बेहद कुशलता से अपने संचार तन्त्र, मीडिया और सिनेमा के माध्यम से जनता के बीच आतंकवाद के प्रति एक सतत भय बनाये रखता है। इसी कड़ी में ट्रम्प ने सात मुसलमान देशों को अमेरिका की सुरक्षा के लिए खतरनाक घोषित किया।

अब जबकि यह तय कर दिया गया कि अमेरिका के भविष्य को सुधारने



17-17  
Morin  
MorinToons Syndicate

और महान राष्ट्र बनाने के रास्ते के प्रमुख रोड़े आप्रवासन और आतंकवाद हैं तो इनसे निपटना बेहद ज़रूरी था। इसलिए राष्ट्रपति पद का कार्यभार सम्भालते ही ट्रम्प ने इनके खिलाफ़ आक्रामक नीतियाँ बनानी शुरू कर दीं। वैसे तो अमेरिका की 45 प्रतिशत जनता ने दोनों में से किसी भी उम्मीदवार को वोट नहीं दिया है, लेकिन जनता का भ्रम बनाये रखने के लिए ट्रम्प की ओर से ऐसी नीतियों का आक्रामक अमल ज़रूरी था, और बिना किसी को निराश किये उम्मीदों पर खरा उतरते उसने अपने कार्यकाल के पहले सप्ताह में ही सात मुसलमान बहुल देशों, ईरान, इराक, सीरिया, यमन, लीबिया, सूडान और सोमालिया पर 90 दिनों तक के लिए आप्रवासन प्रतिबन्ध लगा दिया और शरणार्थियों पर 120 दिनों का पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिया गया। अमेरिका-मेक्सिको सीमा पर दीवार निर्माण की घोषणा कर दी। ट्रम्प ने अमेरिका के एक करोड़ 10 लाख गैरकानूनी प्रवासियों को निर्वासित करने की धमकी दे दी और साथ ही यह भी कहा है कि ऐसे शहर जो गैरकानूनी प्रवासियों को कुछ संरक्षण देते हैं उनके फ़ेडरल फ़ण्ड में भारी कटौती की जायेगी जैसे न्यूयॉर्क, लॉस एंजेलिस, शिकागो, फ़िलाडेल्फ़िया, बोस्टन, डेनवर, वाशिंगटन, सैन फ़्रांसिस्को और सिएटल।

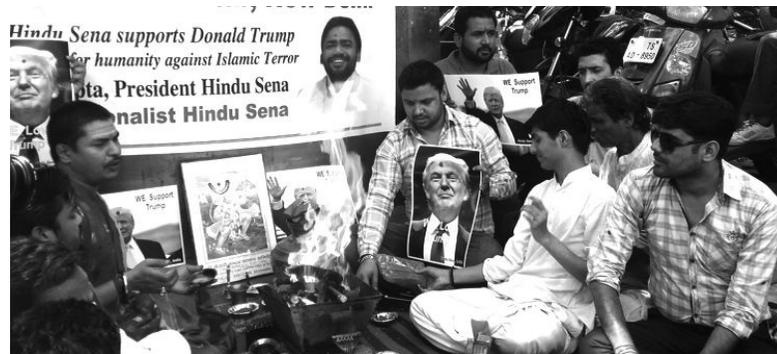
सात देशों पर प्रतिबन्ध की वजह उसने राष्ट्रीय सुरक्षा और अमेरिकी-मेक्सिको सीमा पर दीवार निर्माण की वजह अमेरिकी रोजगार और संसाधनों को अमेरिकी जनता के लिए सुरक्षित करना बताया। अमेरिका-मेक्सिको सीमा पर दीवार निर्माण के सन्दर्भ में सबसे मजेदार बात यह रही कि ट्रम्प ने बार-बार यह कहा कि इस दीवार के निर्माण

का खर्च मेक्सिको देगा। दीवार निर्माण के निर्णय और घोषणा में ट्रम्प ने एक बार भी मेक्सिको के राष्ट्रपति पेन्या नेयतो से सलाह-मशविरा नहीं किया और फिर सीधे उन्हें भुगतान के लिये कहा जाने लगा। पेन्या नेयतो ने इससे साफ़ इनकार कर दिया। यदि ज़रूरत अमेरिका की है तो इसका भुगतान मेक्सिको भला क्यों करे? देर से ही सही लेकिन अब ट्रम्प को शायद यह सीधी सी बात समझ आ गयी है, इसलिए उसने कहा है कि

पूँजीपति वर्ग के एक हिस्से की ओर से भी हो रहा है।

आप्रवासन से जुड़ा एक तथ्य यह भी है कि प्रवासी, विशेष तौर से लातिन अमेरिका से आने वाले कानूनी और गैरकानूनी प्रवासी अमेरिका में बेहद सस्ते श्रम के स्रोत हैं। ये प्रवासी मज़दूर बेहद कठिन कामों में लगाये जाते हैं और इन्हें नाममात्र की मज़दूरी दी जाती है। ट्रम्प की आप्रवासन नीतियों का प्रतिरोध दोनों, राजनीतिक और आर्थिक ज़मीन से होने जा रहा है। वहाँ का पूँजीपति वर्ग इतने सस्ते श्रम के स्रोत को इतनी आसानी से नहीं छोड़ेगा।

अमेरिका के कई फ़ेडरल जजों ने ट्रम्प के आप्रवासन और शरणार्थी सम्बन्धी निर्णयों पर पूर्ण रोक लगा दी है लेकिन अभी यह तय नहीं है कि इस निर्णय को टाला जा सकता है या नहीं क्योंकि



ट्रम्प के भारतीय हिन्दुत्ववादी भक्त

अब 3,200 किमीटर लम्बी दीवार का निर्माण फ़ेडरल फ़ण्ड से होगा जो कि बेहद खर्चीला होने वाला है।

आप्रवासन पर प्रतिबन्ध निश्चित ही इन सात देशों की विश्व स्तर पर एक खराब छवि प्रस्तुत कर रहा है। विश्व में पहले से फैली मुसलमान विरोधी लहर को यह और भड़कायेगा। युद्ध प्रभावित क्षेत्र, मुख्यतः सीरिया से आने वाले आप्रवासियों के लिए इसने बेहद कठिन स्थिति पैदा कर दी है। कई लोग जिन्हें शरणार्थी का दर्जा मिल गया था और वे अपने देशों में नौकरी छोड़ चुके थे और सम्पत्ति बेचकर अमेरिका आने की तैयारी में थे अब उनकी जिन्दगी शरणार्थियों पर लगे पूर्ण प्रतिबन्ध की वजह से अधर में लटक गयी है।

इसके अलावा एच-1बी वीजा पर प्रतिबन्ध और उसके वेतन में दुगुनी वृद्धि अमेरिका के आईटी सेक्टर को ख़ासा प्रभावित करने जा रहा है। यह वहाँ की कम्पनियों के लिए एक बड़ी चिन्ता का विषय है क्योंकि उच्च प्रशिक्षण प्राप्त मज़दूरों को नौकरी पर रखना उनके लिए कठिन और महँगा होने जा रहा है। यह निर्णय उनकी गुणवत्ता के साथ-साथ उनके मुनाफ़े को भी प्रभावित करेगा। इसीलिए ट्रम्प के इस निर्णय का विरोध

ट्रम्प के न्याय विभाग ने फ़ेडरल जजों के निर्णय को चुनौती दी है। जजों का कहना है कि अभी तक किसी भी तथ्य में यह उजागर नहीं हुआ है कि अमेरिका में अब तक के आतंकवादी हमलों के आतंकवादी इन देशों से आते थे। यदि ऐसी कोई वजह नहीं है तो महज़ मुसलमान बहुल देश होने के नाते इन पर प्रतिबन्ध नहीं लगाया जा सकता क्योंकि वीजा जारी करने में अमेरिकी कानून के अनुसार धर्म या नस्ल के आधार पर भेदभाव नहीं किया जा सकता। लेकिन राष्ट्र की सुरक्षा के नाम पर सरकार के हाथों में फ़ेडरल न्यायालय से ज़्यादा शक्ति होती है। इससे यह क़तई नहीं समझा जाना चाहिए कि फ़ेडरल जज या वहाँ की न्यायपालिका निष्पक्ष या न्यायपूर्ण है। बल्कि यह एक निश्चित बुर्जुआ जनवाद के दायरे में ही काम करती है। अगर ऐसा नहीं होता तो अमेरिका के जेलों की आबादी का 70 प्रतिशत अश्वेत नहीं होता।

## ट्रम्प और जन प्रतिरोध

इन नीतियों की घोषणा दर्शाती है कि अमेरिकी जनता के लिए आने वाले दिन आसान नहीं होने जा रहे हैं। यह बात ट्रम्प पर भी लागू होती है।

45 प्रतिशत अमेरिकी जनता जिसका मोहभंग इस व्यवस्था से है और बाक़ी बची जनता इन नीतियों का समर्थन पूर्ण रूप से करेगी, ऐसा लगता नहीं है। इतनी घोर गैरजनवादी, मुसलमान विरोधी, नस्लविरोधी और आप्रवासन विरोधी नीतियों को समर्थन मिलने की जो उम्मीद ट्रम्प को है, वैसा होने नहीं जा रहा है और यह अमेरिका की सड़कों पर दिख भी रहा है। ट्रम्प के राष्ट्रपति बनने की घोषणा होने के बाद और उसके वाइट हाउस में क्रदम रखने पर अमेरिका में प्रतिरोधों की जैसे लहर चल गयी है। ट्रम्प के सात देशों के आप्रवासन प्रतिबन्ध और शरणार्थियों पर पूर्ण प्रतिबन्ध के बाद अमेरिकी जनता विभिन्न शहरों के हवाईअड्डों पर उमड़ पड़ी। शिकागा, डेनवर, सैन फ़्रांसिस्को हवाईअड्डे, जॉन एफ़ केनेडी ऐयरपोर्ट, न्यूयॉर्क आदि जगहों पर लोगों ने इन गैरजनवादी, तानाशाही नीतियों के विरोध में प्रदर्शन किये। स्वयं रिपब्लिकन पार्टी के भीतर ट्रम्प को विरोध का सामना करना पड़ रहा है। रिपब्लिकन नेता, एरिज़ोना के सेनेटर जॉन मैकेन और दक्षिण कैरोलिना के सेनेटर लिन्डसे ग्राहम ने ट्रम्प की नीतियों का विरोध किया है। यदि अमेरिका की जनता

के लिए आने वाला समय कठिन होने जा रहा है तो ट्रम्प के लिए भी चीज़ें आसान नहीं होंगी। ट्रम्प का चरित्र फासीवादी है लेकिन वह किसी फासीवादी पार्टी से नहीं आता। अपनी नीतियों के समर्थन और उन्हें अमल में लाने के लिए उसके पास हताश नौजवानों की कोई फ़ौज नहीं है। इसके अलावा उसकी पार्टी किसी फासीवादी सिद्धान्त के बीज बोने के लिए जनता के बीच कैडर आधारित संगठन के माध्यम से काम नहीं कर रही है। अमेरिकी जनता के बीच उसकी नीतियों की मान्यता आसानी से नहीं होने जा रही। लेकिन इस बात को भी नकारा नहीं जा सकता कि ट्रम्प कू-क्लक्स क्लैन सरीके घोर प्रतिक्रियावादी संगठनों को अपने हित में इस्तेमाल करे। मरणासन्न पूँजीवाद अपने आप को बचाने के लिए हर प्रयास करेगा।

विश्व पूँजीवाद का चौधरी होने के नाते अमेरिका की नीतियाँ दुनिया भर को प्रभावित करेंगी जिसकी झलक हमें देखने को मिल रही है। ट्रम्प की नीतियों का इंग्लैण्ड और फ़्रांस में भी प्रतिरोध हो रहा है। कई हजार की संख्या में लोगों ने इन देशों में प्रतिरोध प्रदर्शन में भाग लिया है। लोग मज़ाक़ में कहते हैं कि हमने कई सालों मोदी झेला है अब पूरी दुनिया को मोदी मिल गया है। वैसे ट्रम्प और मोदी के सत्ता में आने की भौतिक ज़मीन एक है भले ही संगठनात्मक राजनीतिक ज़मीन पर भिन्नता है। लेकिन दोनों में एक स्तर पर ग़ज़ब की समानता है, दोनों जितने जनविरोधी हैं, उतने ही बड़बोले, मूर्ख और लबार भी हैं। हमारा ट्रम्प पुराना है उनका मोदी नया है!

— लता

## चुनावी पार्टियों के फ़ण्ड से काले धन को सफ़ेद करने की स्कीम

हाल में ही जब मोदी जी और उनकी सरकार ने 'काले धन' पर नोटबन्दी ने 'सर्जिकल स्ट्राइक' का ज़िम्मा उठाया था तो यह सवाल भी उठा कि चुनावबाज़ पार्टियों को मिल रहे काले धन पर कैसे रोकथाम लगायी जाये? बहस उठी कि तमाम चुनावबाज़ पार्टियों के वित्तीय लेखे-जोखे का कच्चा चिट्ठा जनता के सामने खोल दिया जाये। इस मुद्दे को ध्यान में रखते हुए मौजूदा केन्द्र सरकार ने अपनी 'देशभक्ति' का परिचय देते हुए फटाफट एक नया प्रस्ताव पारित कर दिया। अब हर चुनावबाज़ पार्टी 2000 रुपये से अधिक मिली रकम का स्रोत बताने के लिए बाध्य होगी। पहले यह सीमा 20,000 रुपये तक थी। मतलब आज जहाँ दो लाख रुपये के चन्दे के लिए 10 नाम जुटाने पड़ते थे अब उसी दो लाख के लिए 100

नाम ढूँढ़ने की 'मेहनत' करनी पड़ेगी। आज भी देशभर में पार्टियों की आय का 70 प्रतिशत हिस्सा 'अज्ञात स्रोत' से 'देशसेवा' के लिए आता है। इस देशसेवा को ये कर्तई भी जनता के सामने नहीं लाना चाहते हैं और इस मामले में एक दूसरे की जान की दुश्मन बर्जुआ चुनावबाज़ पार्टियाँ भी एकमत हैं कि ऐसा नहीं होना चाहिए। हो भी क्यों न इनके स्रोत पर नज़र डालने से इनके इस भाईचारे का कारण समझ आ जाता है।

कांग्रेस इस खेल की पुरानी खिलाड़ी है। इसकी कुल आय का 83 प्रतिशत (जो लगभग 3,323 हजार करोड़) का स्रोत अज्ञात है। वहीं भाजपा भी इसी कतार में खड़ी है और इसके कुल आय का 65 प्रतिशत हिस्सा अज्ञात स्रोत से है। इन पार्टियों को पीछे छोड़ते हुए क्षेत्रीय पार्टी सपा

ने नये कीर्तिमान स्थापित किये हैं। इनकी आय का 94 प्रतिशत हिस्सा अज्ञात स्रोत से आया है, इन्हीं के पीछे खड़ी है अकाली दल जिसे कुल आय का 86 प्रतिशत हिस्सा अज्ञात स्रोत से मिला है। क्षेत्रीय दल बसपा एकमात्र पार्टी है जिसकी आय के 100 प्रतिशत हिस्से का स्रोत अज्ञात है। इसकी आय 11 वर्षों में बढ़कर 5.19 करोड़ से 111.96 करोड़ रुपये हो गयी है, अर्थात् 2057 प्रतिशत की वृद्धि हुई। वहीं 'ईमानदार' और 'पारदर्शिता' की कसम खाकर राजनीति में आयी 'आप' पार्टी इस हमाम में नंगी नहीं थी तो इसे भी हमाम में ढके चीथड़े हटाने पड़े और 'आप' ने भी वेबसाइट से आय-व्यय की जानकारी हटा ली। पंजाब चुनाव में भी पैसे खर्च करने के मामले में 'आप' कांग्रेस और अकाली दल पीछे नहीं हैं, साथ ही विदेशी

फ़ण्ड लेने में 'आप' अव्वल है। यानी 2004-05 से 2014-15 के 11 वर्षों के अन्तराल में राष्ट्रीय पार्टियों की अज्ञात स्रोत से हुए आय में 313 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है यानी कि 274.13 सौ करोड़ से 11,300 हजार करोड़ हुई है। वहीं क्षेत्रीय पार्टियों की आय में अज्ञात स्रोत की भागीदार 652 प्रतिशत बढ़ गई है, मायने 37.393 करोड़ रुपये से 281.01 करोड़ रुपये हुई है।

ये आँकड़े सभी चुनावबाज़ पार्टियों के 'काले धन' और 'भ्रष्टाचार' की लड़ाई की पोल खोल देते हैं। असल में आज चुनावी पार्टियाँ ही काले धन को सफ़ेद बनाने के कारोबार में एक नायाब तरीका है। इससे एक तीर से दो निशाने सध जाते हैं। एक ओर काला धन सफ़ेद हो जाता है, दूसरी ओर पूँजीपति घराने अपना निवेश बेहद समझदारी से करते हैं ताकि हर पाँच साल में होने

वाले चुनाव में चाहे कोई भी पार्टी सत्ता में आये वो नीतियाँ अपने आका पूँजीपति घरानों के लिए ही बनाये। ऐसे में जब भी चुनावी पार्टियों के 'काले धन' 'पारदर्शिता' की बात आती है तो ये तमाम चोर-चोर मौसेरे भाई एक हो जाते हैं, यह एकता दरअसल इनकी वर्ग प्रतिबद्धता के कारण है, मतलब यह कि ये सभी चुनावबाज़ पार्टियाँ मजदूर-गरीब किसान विरोधी नीति बनाने से लेकर पूँजीपतियों को कुदरती सम्पदा और मानवीय श्रम लूटाने में एक हैं। बस इनका आपसी झगड़ा इस बात को लेकर होता है कि चुनावी नौटंकी में जीतकर जनता को लूटने का ठेका कौन लेगा। ताकि पूँजीपतियों के प्रति वफ़ादारी साबित की जा सके।

— वृषाली

## नोटबन्दी के साये में बजट और आर्थिक सर्वेक्षण: अर्थव्यवस्था की खस्ता हालत को झूठों से छिपाने और गरीबों की क्रीमत पर थैलीशाहों को फ़ायदा पहुँचाने का खेल

(पेज 10 से आगे)

भी धरा रह गया; फिर भी जेटली जी शिकायत करते रहे कि बहुत कम लोग टैक्स देते हैं।

### सस्ते घरों का फ़र्ज़ीवाड़ा

इस बजट में गरीबों के लिए एक और बड़ा ऐलान सस्ते घरों को आधारभूत ढाँचे में शामिल कर दी गयी राहत को बताया जा रहा है। 2014 में मोदी जी ने 6 करोड़ सस्ते घर बनाने का वादा किया था; फिर 25 जून 2015 को नरेन्द्र मोदी ने प्रधानमन्त्री आवास योजना की घोषणा की थी जिसमें बेघरों को मकान देने के लिए 2022 तक 2 करोड़ सस्ते घर बनाये जाने थे अर्थात् हर साल 30 लाख। लेकिन जुलाई 2016 में पता चला कि पहले साल में सिर्फ़ 19,255 मकान बनाये गये। अब इस योजना को भी निजी बिल्डरों के हवाले कर दिया गया है और लक्ष्य घटकर 1 करोड़ ही रह गया है। इनको इसके लिए मुनाफ़े पर टैक्स में 100% छूट, 2% कम ब्याज पर कर्ज़ और पूँजीगत लाभ में रियायत दी गयी है। इस बजट में प्रावधान किया गया है कि मेट्रो शहरों में 30 वर्ग मीटर और अन्य जगहों पर 60 वर्ग मीटर तक चटाई क्षेत्र के मकानों को सस्ता मकान माना जायेगा। इतने क्षेत्र में मुम्बई के बिल्डर 500 वर्ग फुट का फ्लैट बनाते हैं जो यहाँ के सबसे बाहरी इलाकों में भी 25-30 लाख से शुरू होता है और महँगे क्षेत्र में तो 2 करोड़ का होता है। ऐसा ही हिसाब अन्य शहरों में भी लगाया जा सकता है, जबकि जिन बेघरों को सस्ते घर चाहिए, उनका 95% हिस्सा ज़्यादा से ज़्यादा 5-10 लाख तक के घर ही किसी तरह खरीद सकते हैं।

बिल्डरों को मिली इन सुविधाओं के साथ ही खरीदारों को सरकारी

सहायता का भी प्रचार किया गया है जिसमें उनके द्वारा कर्ज़ पर 3% से 6.5% ब्याज सरकार देगी। इसमें 3 श्रेणी हैं - 6 लाख, 12 लाख और 18 लाख सालाना आमदनी वालों की और इन्हें यह सहायता बैंकों से 20 साल तक के कर्ज़ पर मिलेगी। लेकिन देश की 80% जनता जिसकी पूरे परिवार की सालाना आय भी 1 लाख से कम होती है क्या उसे भी 20 साल का आवास ऋण किसी बैंक से मिलता है? इससे यह अच्छी तरह समझा जा सकता है कि तथाकथित 'सस्ते' घरों की योजना का असली फ़ायदा किसे मिलने वाला है - गरीब बेघरों को या बड़े-बड़े बिल्डरों और मध्य या अमीर तबक़े के ख़ाये-पिये लोगों को!

### राजनीति की सफ़ाई का झूठ!

एक और बड़ा शिगूफ़ा है राजनीति में भ्रष्टाचार की सफ़ाई कर ईमानदारी लाने का। इसके लिए पार्टियों को नक़द चन्दे की सीमा 20 हजार से घटाकर 2 हजार कर दी गयी है तथा चुनावी बॉन्ड शुरू किये जायेंगे। जहाँ तक नक़द की सीमा कम करने का सवाल है, इससे थोड़े अकाउण्टेंट ही ज़्यादा लगेंगे - ज़्यादा रसीदें बनाने के लिए! फिर जितना पैसा असल में चुनाव और रैलियों में खर्च किया जाता है उसका दसवाँ हिस्सा भी खातों में दिखाया जाता है क्या। अडानी जी के हेलीकॉप्टर में जब मोदी जी (या कोई और जी!) उड़ान भरते हैं तो उसका कोई वाउचर बनता है क्या? हाँ, इस शोर के पीछे चुपचाप राजनीतिक दलों को विदेशी चन्दा लेने की छूट फ़ाइनेंस बिल में घुसा दी गयी है। चुनावी बॉन्ड की योजना में चन्दा देने वाला बैंक में पैसा जमा करेगा और बॉन्ड जारी करायेगा जिस पर कोई नाम नहीं होगा

और बैंक भी इसे लेने वाले का नाम गुप्त रखेंगे। इसके बाद वह इसे किसी भी पार्टी को दे सकेगा जो बैंक से इसके बदले में पैसा ले लेगी और उसे यह यह रिकॉर्ड नहीं रखना पड़ेगा कि पैसा किसने दिया। अब पार्टियाँ आराम से कह सकेंगी कि उन्हें नहीं पता पैसा किससे मिला है अर्थात् जो थोड़ी बहुत जानकारी अब तक मिलती थी, वह भी नहीं मिलेगी। इस तरह केश कम करने के नाम पर राजनीतिक दलों को मिलने वाले पैसे का स्रोत पूरी तरह गुप्त रखने का इन्तज़ाम कर दिया गया है। अब इससे कैसी ईमानदारी आयेगी इसका अन्दाज़ा अच्छी तरह लगाया जा सकता है।

### क्या बजट से विकास होगा?

पिछले कई सालों से एक बड़ी समस्या है नये रोज़गार की भारी कमी। 2014 के चुनाव के वक़्त मोदी ने 2 करोड़ नयी नौकरियों का वादा किया था लेकिन पिछले 2 साल में पहले से भी कम नौकरियाँ मिली हैं। नोटबन्दी के बाद से तो ख़ास तौर पर बहुत बड़ी तादाद में श्रमिकों को बेरोज़गार होना पड़ा है। क्या इस बजट से इन्हें कुछ रोज़गार पाने में कुछ मदद मिलेगी?

कुछ वर्षों में बढ़ती महँगाई की तुलना में घटती वास्तविक मजदूरी और नये रोज़गारों की कमी ने बाज़ार में उपभोक्ता वस्तुओं की माँग में वृद्धि को प्रभावित किया है जिससे उद्योग माँग के मुकाबले अति-उत्पादन के संकट का सामना कर रहे हैं और पहले से स्थापित क्षमता का पूरा उपयोग मुमकिन नहीं हो पा रहा है। रिज़र्व बैंक के अनुसार क्षमता उपयोग मार्च 2011 में 83% के मुकाबले जून 2016 में 72% ही रह गया है। इसलिए निजी क्षेत्र नये उद्योग में निवेश नहीं कर रहा है। पूँजीवादी व्यवस्था में आमतौर

पर इससे निकलने के लिए 2 तरीके इस्तेमाल करने की कोशिश की जाती है - सरकार तथा सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा निवेश और सरकारी खर्च में वृद्धि। लेकिन सरकारी खर्च में इस वर्ष सिर्फ़ 6% वृद्धि का प्रस्ताव है जो 10 साल में सबसे कम है। जीडीपी के प्रतिशत के तौर पर देखें तो इसमें आधा प्रतिशत की कमी हुई है। गरीब लोगों को कुछ तात्कालिक राहत देने वाली रोज़गार योजना के खर्च में भी सिर्फ़ 1% वृद्धि की गयी है। जहाँ तक निवेश का सवाल है सरकार के पूँजीगत खर्च में सिर्फ़ 10% वृद्धि है जो पिछले सालों के औसत 12% से कम है और सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के निवेश में तो 2000 करोड़ की कमी का प्रस्ताव है। अगर बैंकों से कर्ज़ द्वारा निवेश का सोचा जाये तो डूबे कर्ज़ों की वजह से बैंकों के पास कर्ज़ देने लायक पूँजी नहीं है और उद्योगों को कर्ज़ बढ़ नहीं घट रहे हैं।

इसलिए उद्योगों में नये निवेश और नवीन रोज़गार सृजन की सम्भावना दूर तक नज़र नहीं आती। फिर बजट से पिछले कई साल से नौकरियों की कमी, घटती आमदनी और बढ़ती महँगाई झेल रहे मजदूर, छोटे-मध्यम किसानों, गाँवों से उजड़कर शहरों में छोटे-मोटे धन्धे करने वालों को क्या मिला? एक झुनझुना तक भी नहीं! हाँ, श्रम क़ानूनों में बदलाव से मालिकों द्वारा नौकरी से आसानी से निकालने के इन्तज़ाम की तलवार गर्दन पर ज़रूर तन गयी है! इसी तरह छोटे-मध्यम किसानों की बरबादी की क़ब्रगाह तैयार करने के लिए कॉन्ट्रैक्ट फ़ार्मिंग शुरू करने का भी ऐलान किया गया है जिसके जरिये मेहनतकश किसान को कॉर्पोरेट गुलामी में बाँध दिया जायेगा। इसी के साथ सार्वजनिक

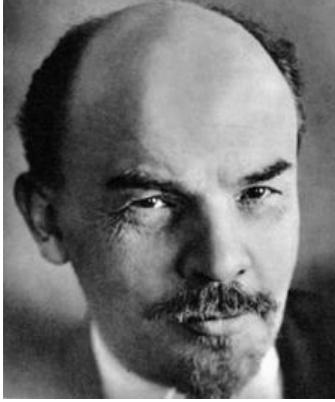
क्षेत्र के उपक्रमों को भी निजी क्षेत्र के पूँजीपतियों के हाथों में सौंपने का लक्ष्य तो है ही जो अक्सर वास्तविक से बहुत कम क्रीमत पर किया जाता है। अर्थव्यवस्था के विकास-विस्तार की ज़्यादा सम्भावना के बग़ैर भी अगर बड़े पूँजीपति वर्ग की बजट से विशेष प्रसन्नता का कारण समझना हो तो इस बजट के प्रस्तावों को जीएसटी, नोटबन्दी, डिजिटलीकरण, केश को हतोत्साहित करने, आदि के साथ जोड़कर देखना चाहिए।

इस बजट में भी 3 लाख से ज़्यादा केश के लेन-देन पर जुर्माना सहित बहुत सारे प्रावधान हैं जो अर्थव्यवस्था के अनौपचारिक क्षेत्र को औपचारिक में आने के लिए प्रोत्साहित और न आने पर दण्डित करते हैं। अनौपचारिक क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था में लगभग 45% है और औपचारिक क्षेत्र से अपनी कम लागत की वजह से प्रतियोगिता में बाज़ार के एक बड़े हिस्से पर छाया हुआ है। अभी इन सारे प्रावधानों-उपायों से इसे औपचारिक की ओर धकेला जा रहा है जहाँ कम लागत का फ़ायदा समाप्त हो जाने से यह बड़ी कॉर्पोरेट पूँजी के सामने नहीं टिक पायेगा। इससे बड़ी संख्या में श्रमिक बेरोज़गार होंगे, छोटे काम-धन्धों में लगे कारोबारी और छोटे किसान बरबाद हो जायेंगे। लेकिन अर्थव्यवस्था में ज़्यादा विकास-विस्तार न होने पर भी मौजूदा बाज़ार में ही इस बड़ी कॉर्पोरेट पूँजी और उसके कार्टेलों का एकाधिकार, और नतीजतन मुनाफ़ा बढ़ेगा। इसलिए इसके प्रवक्ता कॉर्पोरेट मीडिया और आर्थिक विशेषज्ञ बजट की तारीफ़ों के पुल बाँधने में लगे हैं।

# 'इस्क्रा' के सम्पादकीय बोर्ड का घोषणापत्र

– वी.आई. लेनिन

(सम्पादकीय बोर्ड की ओर से)



संकेत देती हैं जहाँ वे बुर्जुआ व्यवस्था की वकालत के समकक्ष हो जाती हैं। परिणामस्वरूप हमें हासिल होते हैं वे भ्रम और अराजकता जिसके बल पर भूतपूर्व मार्क्सवादी, या सही कहें तो भूतपूर्व समाजवादी बर्नस्टीन अपनी विजय का बखान करने लगता है और प्रेस में निर्विरोध घोषणा करता है कि रूस में सक्रिय सामाजिक जनवादियों का बहुमत उसका अनुयायी है।

हम खतरे को बढ़ा-चढ़ाकर पेश नहीं करना चाहते परन्तु इसकी ओर से आँखें मूँद लेना बेहद नुकसानदेह होगा। इसी कारण हम 'श्रमिक मुक्ति दल' ('इमैन्सिपेशन ऑफ़ लेबर' ग्रुप) द्वारा अपनी साहित्यिक गतिविधियाँ पुनः प्रारम्भ करने और सामाजिक जनवाद को विकृत करने और भोंडे रूप में पेश करने के प्रयासों के विरुद्ध सुनियोजित संघर्ष छेड़ने का हृदय से स्वागत करते हैं।

उपरोक्त तथ्यों से यह व्यावहारिक निष्कर्ष निकाला जा सकता है: हम रूसी सामाजिक जनवादियों को एकजुट होकर अपने सारे प्रयास एक ऐसी मज़बूत पार्टी के निर्माण की दिशा में लगा देने चाहिए जो सामाजिक जनवाद के एकमात्र झण्डे के नीचे संघर्ष करे। 1898 की कांग्रेस ने – जिसमें रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की स्थापना हुई थी और घोषणापत्र प्रकाशित किया गया था - ठीक यही कार्यभार हमें सौंपा था।

हम स्वयं को इस पार्टी का सदस्य मानते हैं; हम घोषणापत्र में निहित मूल विचारों से पूर्णतया सहमत हैं और अपने लक्ष्य की आम घोषणा के रूप में इसे अतिशय महत्व देते हैं। इस कारण, हम, इस पार्टी के सदस्यों के तौर पर, अपने तात्कालिक और प्रत्यक्ष कार्यभार का प्रश्न इस रूप में प्रस्तुत करते हैं : पार्टी को अधिकतम सम्भव मज़बूती के साथ पुनरुज्जीवित करने के लिए हमें कौन सी कार्य योजना अपनानी चाहिए?

आमतौर पर इस प्रश्न का यही उत्तर मिलता है कि हमें एक नयी केन्द्रीय समिति चुनकर उसे निर्देशित करना चाहिए कि वह पार्टी मुखपत्र का प्रकाशन पुनः प्रारम्भ करे। परन्तु भ्रम और अव्यवस्था के जिस दौर से हम इस समय गुज़र रहे हैं उसमें इस सीधे-सादे तरीके से शायद ही कोई लाभ हो।

पार्टी को स्थापित और मज़बूत करने का अर्थ है सभी रूसी सामाजिक-

अभाव और रूसी सामाजिक जनवाद की अब तक की उपलब्धियों से पूर्ण अलगाव और अपरिचय और भी स्पष्ट हो जाता है।

ऐसा बिखराव आन्दोलन के शक्ति और व्यापकता के वर्तमान स्तर से उपजी अपेक्षाओं के अनुरूप नहीं है और हमारे विचार से इसके विकास में एक महत्वपूर्ण चिन्तनीय लम्हे को हमारे सामने उपस्थित करता है। आन्दोलन के अन्दर सुदृढ़ीकरण, तालमेल और एक सुनिश्चित ढाँचे और संगठन की सख्त ज़रूरत महसूस की जाने लगी है; फिर भी व्यावहारिक स्तर पर सक्रिय सामाजिक जनवादियों में से कई अब आन्दोलन को नयी ऊँचाइयों तक ले जाने की आवश्यकता को नहीं समझ पा रहे हैं। बल्कि इसके विपरीत व्यापक दायरों में वैचारिक दुलमुलपन दिखता है – जैसे कि, 'मार्क्सवाद की आलोचना' के फ़ैशन और 'बर्नस्टीनवाद' के प्रति मूर्खतापूर्ण आसक्ति, तथाकथित 'अर्थवादी' रुझान के विचारों का प्रसार, और इसी के अभिन्न अंग अर्थात् आन्दोलन को निचले स्तर पर ही अटकाये रखने का प्रयास, और जनसंघर्षों का नेतृत्व करने वाली क्रान्तिकारी पार्टी के गठन के कार्यभार को पृष्ठभूमि में ठेल देना। यह भी एक तथ्य है कि रूसी सामाजिक जनवादियों में ऐसा वैचारिक दुलमुलपन दिखाई देता है और आन्दोलन की सैद्धान्तिकी से पूरी तरह असम्बद्ध इस संकीर्ण व्यवहारवाद से पूरे आन्दोलन के ही भटकावग्रस्त हो जाने का खतरा है। जिस व्यक्ति को भी हमारे अधिकांश संगठनों की हालत के बारे में प्रत्यक्ष जानकारी है, उसे इस बारे में कोई भी सन्देह नहीं है। यही नहीं, इस तथ्य की पुष्टि करने वाली साहित्यिक रचनाएँ भी मौजूद हैं। यहाँ उस विचार पद्धति का उल्लेख ही पर्याप्त होगा जिसका उचित और आवश्यक विरोध पहले ही प्रारम्भ हो चुका है। "राबोचाया मिस्ल" (सितम्बर 1899) का अतिरिक्त परिशिष्ट जो उस रुझान को बिलकुल साफ़ तरीके से सामने ले आता है जो पूरे राबोचाया मिस्ल में व्याप्त है, और अन्त में, सेण्ट पीटर्सबर्ग के 'मज़दूर वर्ग का आत्मोद्धार' समूह<sup>(1)</sup> का घोषणापत्र भी "अर्थवादी" दृष्टिकोण से ही लिखा गया है। और राबोचेये दिलो के ये दावे भी पूरी तरह असत्य हैं कि यह विचार पद्धति सिर्फ़ कुछ व्यक्तियों की राय का प्रतिनिधित्व करती है और कि राबोचाया मिस्ल द्वारा प्रदर्शित रुझान रूसी मज़दूर वर्गीय आन्दोलन के विकास क्रम में एक खास प्रवृत्ति होने के बजाय उसके सम्पादकों के मतिभ्रम और फूहड़पन की अभिव्यक्ति मात्र है।

इसके साथ ही साथ, उन लेखकों की रचनाएँ जिन्हें अब तक लोग कमोबेश "वैध" मार्क्सवाद के मुख्य प्रतिनिधियों में गिनते हैं, विचारों और सोच के उत्तरोत्तर उस दिशा में बढ़ने का

एक राजनीतिक समाचारपत्र, 'इस्क्रा', का प्रकाशन प्रारम्भ करते समय हम यह आवश्यक समझते हैं कि जिन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए हम प्रयासरत हैं, उनके और अपने कार्यभारों की अपनी समझ के बारे में कुछ कहें।

हम रूसी श्रमिक वर्गीय आन्दोलन और रूसी सामाजिक जनवाद\* के इतिहास के अत्यन्त महत्वपूर्ण दौर से गुज़र रहे हैं। पिछले कुछ वर्षों का मुख्य लक्षण रहा है – हमारे बुद्धिजीवी वर्ग में सामाजिक जनवादी विचारों का आश्चर्यजनक तेज़ी से होता प्रचार-प्रसार, और सामाजिक विचारों के इस रुझान के साथ ही औद्योगिक सर्वहारा का एक आन्दोलन भी हाथ मिलाता लगता है जो अपने शोषकों के विरुद्ध संगठित होने और जूझने लगा है और समाजवाद के लिए संघर्ष करने को व्यग्र हो रहा है। सभी जगह मज़दूरों और सामाजिक जनवादी बुद्धिजीवियों के अध्ययन चक्र अस्तित्व में आते जा रहे हैं, स्थानीय आन्दोलनों के पर्चे बड़ी संख्या में वितरित हो रहे हैं, सामाजिक जनवादी साहित्य की माँग बढ़ रही है और आपूर्ति से कहीं अधिक है, और कठोर सरकारी उत्पीड़न भी आन्दोलन पर लगाम लगाने में असमर्थ है। जेलों और निर्वासन के स्थान अपनी क्षमता से अधिक भर चुके हैं। शायद ही कोई ऐसा महीना जाता होगा जिसमें हम पूरे रूस में फैले विशाल 'जाल में समाजवादियों के फँसने', भूमिगत सन्देशवाहकों के पकड़े जाने, साहित्य और छापेखानों की ज़बती के समाचार न सुनते हों। परन्तु आन्दोलन तो बढ़ ही रहा है, लगातार रूस के व्यापकतर इलाकों में फैलता जा रहा है, मज़दूर वर्ग में और भी गहरी जड़ें जमाता जा रहा है और लगातार बढ़ते अनुपात में लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता जा रहा है। रूस का पूरा आर्थिक विकास, सामाजिक चिन्तन का इतिहास, और रूसी क्रान्तिकारी आन्दोलन इस बात की गारण्टी देते हैं कि सामाजिक जनवादी मज़दूर आन्दोलन बढ़ता ही जायेगा और अपने सामने उपस्थित सभी अवरोधों पर निश्चय ही विजय प्राप्त कर लेगा।

(\*उस वक्रत 'सामाजिक जनवाद' का मतलब क्रान्तिकारी समाजवाद था-सं.)

दूसरी ओर हमारे आन्दोलन का जो मुख्य लक्षण पिछले दिनों में विशेष रूप से सामने आया है, वह है इसमें एकता का अभाव और इसका नौसिखियापन। जगह-जगह अध्ययन चक्र बन रहे हैं और सक्रिय भी हैं – पर एक-दूसरे से अलग-थलग – खास तौर पर ऐसे अध्ययन चक्र जो एक ही ज़िले में सक्रिय रहे हैं। न तो कोई सुनिश्चित परम्पराएँ स्थापित की जा रही हैं, न ही किसी निरन्तरता का निर्वाह हो रहा है। स्थानीय प्रकाशनों में यह एकजुटता का

जनवादियों के बीच एकता को स्थापित और मज़बूत करना, और ऊपर गिनाये गये कारणों से, ऐसी एकता के लिए आदेश नहीं दिया जा सकता, न ही यह निर्वाचित प्रतिनिधियों के किसी निर्णय द्वारा स्थापित की जा सकती है; इसके लिए तो कठिन परिश्रम करना होगा। सबसे पहले तो, एक ठोस वैचारिक एकता के लिए काम करना होगा जो उन मतभेदों और भ्रान्तियों को निर्मूल कर सके जो – साफ़-साफ़ कहें तो!

– रूसी सामाजिक जनवादियों को आज अपनी गिरफ्त में लिये हुए हैं। इस वैचारिक एकता को एक पार्टी कार्यक्रम के द्वारा सुदृढ़ करना होगा। दूसरे, हमें आन्दोलन के सभी केन्द्रों के बीच सम्पर्क स्थापित करने और उसे बनाये रखने, आन्दोलन के बारे में पूरी सूचना समय से पहुँचाने, और हमारे अखबार और पत्रिकाएँ रूस के सभी भागों में नियमित रूप से वितरित करने के उद्देश्य से एक संगठन खड़ा करने के लिए काम करना होगा। पार्टी एक ठोस आधार वाली वास्तविकता और परिणामस्वरूप एक सशक्त राजनीतिक शक्ति सिर्फ़ तभी बन पायेगी जब ऐसा संगठन बन चुका हो, जब एक रूसी अग्रिम चौकी स्थापित हो चुकी हो। हमारा इरादा अपने प्रयासों को इस कार्यभार के पूर्वाङ्क पर केन्द्रित करने का है अर्थात् ऐसे साहित्य की रचना जो सैद्धान्तिक रूप से सुसंगत और क्रान्तिकारी सामाजिक-जनवाद को विचारधारात्मक रूप से एकजुट करने में समर्थ हो क्योंकि हमारे विचार से यह आज हमारे आन्दोलन का महत्वपूर्ण तकाजा और पार्टी गतिविधियों को पुनः प्रारम्भ करने के लिए आवश्यक प्राथमिक क्रम है।

जैसाकि हम कह चुके हैं, रूसी सामाजिक जनवादियों की विचारधारात्मक एकजुटता अभी निर्मित की जानी है और हमारे विचार से इसके लिए आवश्यक है कि आज के "अर्थवादियों", "बर्नस्टीनवादियों", और "आलोचकों" द्वारा उठाये गये सिद्धान्त और रणकौशल सम्बन्धी मूलभूत प्रश्नों पर खुली और व्यापक बहस की जाये। एकजुट होने से पहले, और एकजुट होने के लिए हमें कुछ सुनिश्चित सीमाएँ खींची होंगी। अन्यथा हमारी एकजुटता पूरी तरह बनावटी होगी और वर्तमान वैचारिक भ्रमों के पूर्ण उन्मूलन को बाधित ही करेगी। अतः यह बात बिलकुल साफ़ है कि हमारा उद्देश्य अपने प्रकाशन को विभिन्न विचारों का गोदाम भर बना देने का कतई नहीं है। इसके ठीक विपरीत हम अपना प्रकाशन एक सुनिश्चित, सुपरिभाषित उद्देश्य की भावना से संचालित करेंगे। यह भावना एक शब्द - मार्क्सवाद - में व्यक्त की जा सकती है और यह दुहराना शायद ही आवश्यक हो कि हम दृढ़ता के साथ मार्क्स और एंगेल्स के विचारों

के सुसंगत विकास के पक्ष में हैं और मज़बूती के साथ उन लफ़फ़ाज़ी पूर्ण, गोलमोल, और अवसरवादी "सुधारों" को अस्वीकार करते हैं जिनका फ़ैशन एडुअर्ड बर्नस्टीन, पी. स्त्रूवे, और अन्य कई लोगों ने चला रखा है। यद्यपि हम सारे मुद्दों पर चर्चा अपने सुनिश्चित दृष्टिकोण से ही करेंगे, पर हम अपने कॉलमों में कामरेडों के बीच होने वाली बहस के लिए स्थान रखेंगे। सभी रूसी सामाजिक-जनवादियों और वर्गचेतन मज़दूरों के सामने ऐसी खुली बहस आवश्यक और वांछित है ताकि मौजूदा मतभेदों की गहराई स्पष्ट हो सके, ताकि विवादित मुद्दों पर सभी दृष्टिकोणों से बहस हो सके, ताकि उस अतिवाद के विरुद्ध संघर्ष किया जा सके जिसके शिकार न केवल विभिन्न विचारों के अपितु विभिन्न इलाकों और क्रान्तिकारी आन्दोलन की भिन्न-भिन्न "विशिष्टताओं" के प्रतिनिधि अपरिहार्य रूप से हो जाते हैं। निस्सन्देह, जैसाकि ऊपर कहा गया है, हम स्पष्ट रूप से परस्पर विरोधी दृष्टिकोणों के बीच खुली बहस के अभाव और बुनियादी मुद्दों के बारे में मतभेदों पर पर्दा डालने के प्रयास को वर्तमान आन्दोलन की कमजोरियों में से एक मानते हैं।

हम अपने प्रकाशन कार्यक्रम के सारे मुद्दों और बिन्दुओं के विस्तार में नहीं जायेंगे क्योंकि यह कार्यक्रम स्वतः वर्तमान परिस्थितियों में प्रकाशित एक राजनीतिक समाचारपत्र कैसा होना चाहिए की आम धारणा पर ही आधारित है।

हमारा पूरा प्रयास रहेगा कि प्रत्येक रूसी कामरेड हमारे प्रकाशन को अपना ही माने, जिससे सारे ही समूह आन्दोलन से सम्बन्धित हर तरह की सूचनाएँ साझा कर सकें, जिसमें वे अपने अनुभव दूसरों से बाँट सकें, अपने विचार व्यक्त कर सकें, राजनीतिक साहित्य की अपनी आवश्यकताएँ बता सकें, और सामाजिक-जनवादी संस्करणों के बारे में अपनी राय व्यक्त कर सकें, संक्षेप में कहें तो, आन्दोलन के लिए उनका जो भी योगदान हो और आन्दोलन से उन्होंने जो कुछ भी ग्रहण किया हो, वे उस प्रकाशन के माध्यम से साझा कर सकें। सिर्फ़ इसी तरीके से एक अखिल रूसी सामाजिक-जनवादी मुखपत्र की नींव डालना सम्भव हो सकेगा। सिर्फ़ ऐसा प्रकाशन ही आन्दोलन को राजनीतिक संघर्ष के असली रास्ते पर ले जा सकेगा। "अपनी सीमाओं का विस्तार करो और अपनी प्रचारात्मक, आन्दोलनात्मक, और संगठनात्मक गतिविधियों की अन्तर्वस्तु को और भी व्यापक बनाओ" - पी.बी. एक्सेलरोद के इन शब्दों को रूसी सामाजिक-जनवादियों की निकट भविष्य की कार्यवाहियों को परिभाषित करते

(पेज 13 पर जारी)

## पाँच राज्यों में एक बार फिर विकल्पहीनता का चुनाव : मज़दूर वर्ग के स्वतन्त्र पक्ष के क्रान्तिकारी प्रतिनिधित्व का सवाल

(पेज 9 से आगे)

और सिद्ध करना होगा। और ऐसा केवल तभी किया जा सकता है जबकि पूँजीवादी चुनावों में रणकौशल के तौर पर कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी पक्ष हस्तक्षेप करे। पूँजीवादी संसदवाद का हम वैज्ञानिक और ऐतिहासिक तौर पर मनोगत रूप में खण्डन करते हैं, लेकिन इस खण्डन को ही बुर्जुआ संसद व विधानसभाओं का वस्तुगत अन्त नहीं समझ लिया जाना चाहिए। इसके वस्तुगत तौर पर अन्त की ज़मीन तभी तैयार हो सकती है, जबकि एक बोल्शेविक उसूलों पर कसी हुई क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी की अगुवाई में सड़क का आन्दोलन आगे बढ़े और साथ ही ऐसी पार्टी के नेतृत्व में बुर्जुआ संसद और विधानसभाओं और साथ ही नगरपालिकाओं में रणकौशल के तौर पर भागीदारी की जाये और उनकी सीमाओं को खोलकर सामने रखा जाये।

### अन्त में...

यह एक बड़ी चुनौती है। आज देश भर में बुर्जुआ चुनावों में मज़दूर वर्ग के स्वतन्त्र क्रान्तिकारी पक्ष की नुमाइन्दगी करने वाली कोई क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी मौजूद नहीं है। एक ओर वामपन्थी दुस्साहसवादी कार्यदिशा है जो कि पूँजीवादी चुनावों के बहिष्कार का नारा देती है, जबकि कोई उसकी बात ही नहीं सुनता! वहीं दूसरी ओर सुधारवादी संशोधनवादी नकली कम्युनिस्ट पार्टियाँ हैं, जिनकी राजनीति वस्तुतः बुर्जुआ व्यवस्था की ही आखिरी सुरक्षा पंक्ति का काम करती है। ऐसे में, मौजूद पाँच राज्यों के विधानसभा चुनावों में भी मज़दूर वर्ग की कोई नुमाइन्दगी नहीं है। मज़दूर वर्ग का कोई प्रतिनिधित्व नहीं है। मज़दूर वर्ग के स्वतन्त्र पक्ष की अनुपस्थिति के कारण मज़दूर वर्ग का अच्छा-खासा हिस्सा इस या उस पूँजीवादी चुनावी पार्टी का पिछलग्गू बनने को मजबूर है। इसका नुकसान केवल राजनीतिक ही नहीं बल्कि विचारधारात्मक भी है। मज़दूर

वर्ग विचारधारात्मक तौर पर भी पिछलग्गू बनने लगता है, निहत्था हो जाता है और पूँजीवादी विचारधारा के वर्चस्व के मातहत आने लगता है।

ऐसे में, आज देश के क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट आन्दोलन के समक्ष कई अहम कार्यभार हैं। पहला यह कि आज एक क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी के निर्माण की आवश्यकता है। मौजूदा क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट ग्रुपों के कठमुल्लावाद, उनके पुराने पड़ चुके कार्यक्रम, रणनीति और आम रणकौशल और नेतृत्व के अवसरवाद के कारण उनके बीच कोई टिकाऊ एकता हो ही नहीं सकती। ऐसे में, नया क्रान्तिकारी विचार केन्द्र, प्रयोग केन्द्र और भर्ती केन्द्र विकसित करते हुए एक नयी क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी का निर्माण करना होगा। दूसरा बड़ा कार्यभार यह है कि इस नयी क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में मज़दूर वर्ग का व्यापक हड़ताल आन्दोलन खड़ा करना होगा, ग़रीब किसानों और खेतिहर मज़दूरों के संगठन व यूनियनों बनाते हुए संघर्ष की शुरुआत करनी होगी और साथ ही व्यापक निम्न मध्यवर्गीय आबादी के अधिकतम सम्भव हिस्सों को उनकी रोज़मर्रा की माँगों पर खड़ा करते हुए भावी नयी समाजवादी क्रान्ति के पक्ष में जीतना होगा। लेकिन इतना ही काफी नहीं होगा। तीसरा बड़ा कार्य यह है कि क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में पूँजीवादी चुनावों व अन्य संवैधानिक-क्रान्ती मंचों पर मज़दूर वर्ग की स्वतन्त्र क्रान्तिकारी पक्ष की नुमाइन्दगी करते हुए रणकौशल के तौर पर हस्तक्षेप करना होगा और पूँजीवादी जनवाद के सभी औपचारिक वायदों को पूर्ण करने की ज़िद और संघर्ष के ज़रिये इसकी अन्तिम सीमाओं को उजागर करना होगा, ताकि व्यापक मेहनतकश अवाम को एक बेहतर और ज़्यादा उन्नत सर्वहारा जनवाद के लिए तैयार किया जा सके और उस सर्वहारा जनवाद की स्थापना हेतु एक

क्रान्तिकारी परिवर्तन के लिए भी तैयार किया जा सके। यह तीसरा काम बेहद मुश्किल और जटिल है और इस काम को हाथ में लेने के बाद प्रारम्भिक दौर में कई ग़लतियों के लिए भी तैयार रहना होगा। लेकिन इसकी जटिलता और दुरुहता से डरकर इस काम को अनिश्चित काल तक नहीं टाला जा सकता है।

यह स्पष्ट है कि मौजूदा चुनाव में किसी को भी वोट न डालने या किसी को भी वोट डाल देने से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ने वाला। बस इतना होगा कि शायद एक पूँजीवादी पार्टी की जगह दूसरी पूँजीवादी पार्टी सत्ता में आ जाये। वस्तुगत तौर पर, फासीवादी पार्टी यानी भाजपा और संघ परिवार का सत्ता में न आना निश्चित तौर पर तात्कालिक तौर पर कुछ राहत देता दिख सकता है और शायद कुछ राहत वास्तव में भी दे। एक फासीवादी पूँजीवादी पार्टी और अन्य पूँजीवादी पार्टियों में सर्वहारा वर्ग को तात्कालिक रणनीति और आम रणकौशल के लिए फ़र्क़ करना ही चाहिए। लेकिन यह भी स्पष्ट है कि फासीवादी ताक़तों का ख़तरा किसी उदार पूँजीवादी पार्टी के ज़रिये नहीं दूर हो सकता है, क्योंकि वह उदार पूँजीवादी पार्टियों के शासन के दौर में पैदा अनिश्चितता, अराजकता और असुरक्षा के कारण ही पैदा होता है। इसलिए हम इस या उस पूँजीवादी पार्टी के ज़रिये तात्कालिक राहत की भी बहुत ज़्यादा उम्मीद न ही करें तो बेहतर होगा। वास्तव में, अब तात्कालिक तौर पर भी मज़दूर वर्ग के लिए यह ज़रूरी बन गया है कि वह स्वतन्त्र तौर पर अपने राजनीतिक पक्ष को पूँजीवादी चुनावों के क्षेत्र में प्रस्तुत करे और अपने क्रान्तिकारी रूपान्तरण की लम्बी लड़ाई को आगे बढ़ाने के लिए इन चुनावों में रणकौशल के तौर पर भागीदारी करे। इसके बिना भारत में मज़दूर वर्ग का क्रान्तिकारी आन्दोलन ज़्यादा आगे नहीं जा पायेगा।

## 'इस्क्रा' के सम्पादकीय बोर्ड का घोषणापत्र

(पेज 13 से आगे)

नारे की भूमिका अदा करनी चाहिए, और यही नारा हम अपने प्रकाशन के कार्यक्रम के लिए भी अपना रहे हैं।

हमारी अपील मात्र समाजवादियों और वर्गचेतन मज़दूरों से नहीं है, हम उन सभी का आह्वान करते हैं जो वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था द्वारा उत्पीड़ित हैं; हमारे प्रकाशन के कॉलम उनके लिए उपलब्ध हैं ताकि वे रूसी निरंकुशता की सारी घृणास्पद जुगुप्सा को उजागर कर सकें।

जो लोग सामाजिक-जनवाद को सर्वहारा के स्वतः-स्फूर्त संघर्षों का संगठन भर समझते हैं, वे स्थानीय आन्दोलनों और मज़दूर वर्गीय साहित्य मात्र से सन्तुष्ट हो सकते हैं। हम सामाजिक-जनवाद को इस रूप में नहीं देखते; हम इसे मज़दूर वर्गीय आन्दोलन से अविच्छिन्न रूप से जुड़ी और निरंकुशता के विरुद्ध कार्यरत क्रान्तिकारी पार्टी मानते हैं। सिर्फ़ ऐसी एक पार्टी के रूप में संगठित हो कर ही सर्वहारा – आज के रूस का सर्वाधिक क्रान्तिकारी वर्ग – अपने समक्ष प्रस्तुत ऐतिहासिक कार्यभार को पूरा कर सकेगा – अर्थात् देश के तमाम जनवादी तत्वों को अपने झण्डे के नीचे एकजुट करना और घृणित व्यवस्था के ऊपर निर्णायक विजय का सेहरा उस कठिन संघर्ष के सर पर बाँधना जिसमें कितनी ही पीढ़ियाँ अपनी बलि दे चुकी हैं।

\*\*\*\*\*

समाचारपत्र का आकार एक से दो हस्ताक्षरित आलेखों के बीच होगा।

उन परिस्थितियों के कारण

जिनमें रूसी भूमिगत प्रेस को काम करना पड़ता है, प्रकाशन की कोई नियमित तिथि नहीं होगी।

हमें अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक-जनवाद के अनेक महत्वपूर्ण प्रतिनिधियों से लेख आदि मिलने का, श्रमिक मुक्ति समूह (जी.वी. प्लेखानोव, पी.बी. एक्सलेरोद, और वी. आई. ज़ासुलिच) से घनिष्ठ सहयोग का, और रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी के विभिन्न संगठनों के साथ ही साथ रूसी सामाजिक-जनवादियों के विभिन्न समूहों से मदद का आश्वासन मिला है।

टिप्पणियाँ

[1] मज़दूर वर्ग का आत्मोद्धार समूह "अर्थवादियों" का एक छोटा सा समूह था जो 1898 के पतझड़ में सेप्ट पीटर्सबर्ग में प्रारम्भ हुआ था और कुछ महीने तक ही चल पाया था। इस समूह ने अपने उद्देश्यों का एक घोषणापत्र (लन्दन से प्रकाशित पत्रिका नाकानुने {पूर्वसन्ध्या पर} में मुद्रित), अपनी नियमावली, और मज़दूरों को सम्बोधित कई घोषणाएँ जारी की थीं।

लेनिन ने अपनी पुस्तक 'क्या करें' के दूसरे अध्याय में इस समूह के विचारों की आलोचना की थी।

अनुवाद : अमर नदीम

सर्वप्रथम 'इस्क्रा' द्वारा 1900 में एक स्वतन्त्र पत्र के रूप में प्रकाशित।

स्रोत : लेनिन की संकलित रचनाएँ, प्रगति प्रकाशन, 1964, मास्को, खण्ड 4, पृष्ठ 351-356 (अंग्रेज़ी संस्करण)।

## पूँजीपतियों की हड़ताल

(पेज 16 से आगे)

समझा ही जा सकता है।

ऐसे मामले कोई अपवाद नहीं हैं। 2006 से 2011 तक अमेरिका में फ़ेडरल डिपॉज़िट इंश्योरेंस कॉरपोरेशन की अध्यक्ष रही शीला बेयर ने अपने संस्मरण में लिखा है कि मेरे पूरे कार्यकाल के दौरान मुझे वित्तीय उद्योग के प्रतिनिधियों से ऐसी चेतावनियाँ मिलती रहती थीं कि वित्तीय पूँजी को नियमों में बाँधने के हमारे क्रदमों से "निवेश पर असर पड़ेगा।" जब भी हम बैंकों की नाकामी की क्रीमल लोगों से वसूलने के बजाय उद्योग को इसे चुकाने के लिए कहते थे या जोखिम भरी सट्टेबाज़ी पर लगाम कसने की कोशिश करते थे तो हमें ऐसी धमकियाँ सुननी पड़ती थीं। इसका सीधा मतलब होता था कि अगर आप हम पर लगाम कसोगे

तो हम जैसे रोककर आपकी डिबरी टाइट कर देंगे। कहने की ज़रूरत नहीं, वित्तीय पूँजी के मालिकान अपनी मनमानी करने में कामयाब हो जाते थे।

भारत में भी ऐसे उदाहरणों की कोई कमी नहीं है। उदाहरण-निजीकरण की नीतियों का दौर शुरू होने के समय से लगातार श्रम कानूनों को ढीला बनाने और सरकार के लोककल्याणकारी खर्चों में कटौती करने के लिए पूँजीपति वर्ग दबाव बनाता रहा है और कामयाब होता रहा है। बार-बार कहा जाता है कि अगर मालिकों को अपनी मर्जी से मज़दूरों को काम पर रखने और जब चाहे निकाल देने और उनसे कम से कम कीमत पर ज़्यादा से ज़्यादा काम लेने की छूट नहीं दी जायेगी तो निवेश पर बुरा असर पड़ेगा – दूसरे शब्दों में, अगर लुटेरों को लूट की खुली छूट नहीं दी

जायेगी तो वे जैसे नहीं लगायेंगे। जाहिर है, अगर ऐसा हुआ तो अर्थव्यवस्था संकट में पड़ेगी, लोगों को रोज़गार नहीं मिलेगा (और नेताओं को कमीशन भी नहीं मिलेगा)। पूँजीपतियों का दबाव था कि अस्पताल, स्कूल, सड़क, बिजली हर जगह से सरकार अपने हाथ खींच ले ताकि इन बुनियादी सेवाओं को भी बाज़ार में बेचकर मुनाफ़ा कूटने की उन्हें छूट मिल जाये। जनता के जैसे से खड़े किये सार्वजनिक उद्योगों को औने-पौने दामों पर पूँजीपतियों के हाथों बेच दिया जाये। किसानों के खाद-बीज से लेकर ग़रीबों के दवा-इलाज तक पर से सब्सिडी ख़त्म कर दी जाये और उद्योगपतियों को लाखों करोड़ की सब्सिडी और टैक्स रियायतें न सिर्फ़ जारी रहें बल्कि और बढ़ा दी जायें – ये सारी माँगें देशी-विदेशी पूँजीपतियों

के गिरोह ने सरकारों पर दबाव डालकर मनवायी हैं। अगर इसे सबसे घटिया दर्जे की ब्लैकमेलिंग न कहा जाये तो फिर किसे कहा जायेगा? लेकिन क्या आपने कहीं भी, किसी मीडिया चैनल पर इस ब्लैकमेलिंग की भर्त्सना होते सुनी है?

1930 के दशक में आयी महामन्दी के समय अमेरिकी दार्शनिक जॉन डेवी ने कहा था कि "राजनीति समाज पर पड़ने वाली बड़े उद्योग की छाया भर है।" सरकार "बड़े उद्योगों के हितों की अनुगूँज..." और कई बार "उनकी सहयोगी भर होती है।" हालाँकि वे कोई नयी बात नहीं कह रहे थे। मार्क्सवादी विचारक बहुत पहले से कहते आ रहे हैं कि राज्य वर्ग शासन का एक उपकरण मात्र है, और बुर्जुआ समाज में सरकारें पूँजीपतियों की सेवा करने के लिए ही बनती हैं। जैसे, ऐडम स्मिथ ने 1776 में

ही कह दिया था कि इंग्लैण्ड के "व्यापारी और उद्योगपति" व्यापारिक नीति के "मुख्य कर्ता-धर्ता" थे और राजनीतिज्ञ उनके हितों का "बड़े ध्यान से खयाल रखते थे।"

इन तमाम उदाहरणों से एक बात स्पष्ट है कि राजनीति और चुनाव प्रणाली में होने में वाले सुधारों से समाज पर पूँजी की जकड़बन्दी और घपले-घोटाले ख़त्म नहीं होंगे। जिनके हाथों में पूँजी की ताक़त होती है वही राजनीति को भी नियंत्रित करते हैं। समाज में आर्थिक संसाधनों के मालिकाने और नियंत्रण के ढाँचे को आमूल रूप से बदलकर, यानी निजी मालिकाने और उससे उपजने वाले नाजायज़ अधिकारों की पूरी व्यवस्था को ख़त्म करके ही इस अंधेरे की मिटाया जा सकता है।

अक्टूबर क्रान्ति की शतवार्षिकी के अवसर पर एक संस्मरण

## "हम लूटमार नहीं, क्रान्ति करने आये हैं!"

- बेस्सी बीटी

(अमरीकी पत्रकार जो जुलाई 1917 में रूस आयी थीं और लगभग आठ महीने वहाँ रही थीं। उनकी 'दि रेड हार्ट ऑफ़ रशा' नामक पुस्तक 1919 में प्रकाशित हुई थी।)

नेवस्की शान्त था।<sup>1</sup> पैलेस स्कवेयर लगभग सूना पड़ा हुआ था। नेवा के साथ प्रत्येक पुल के प्रवेश पर सैनिकों का एक झुण्ड आग के आसपास बैठा था। उस झुण्ड के मध्य में यहाँ-वहाँ एक छोटा लड़का बैठा था। और इतने सारे बड़े लोगों के बीच बैठकर संसार में कहीं के भी छोटे लड़के जो भी महसूस करते हैं उसी प्रकार का रोमांच महसूस कर रहा था। प्रत्येक झुण्ड के कुछ ही दूर गोला-बारूद से भरी एक वैगन खड़ी थी।

उस रात की स्थिति में ऐसी कोई बात नहीं थी जो केरेंस्की की सरकार<sup>2</sup> के लिए शुभ हो। वह एक रस्से पर चढ़े एक नट जैसे था - चाहे जब भी गिर सकता था। 'सारी सत्ता सोवियतों के लिए' नारा और तेज़ हो गया और हर घण्टे बढ़ता ही रहा। रूसी मज़दूर जो विश्व का सबसे छोटा मज़दूर दल था, सबसे अधिक वर्ग जागरूक और कृतसंकल्प था और उसके पास बन्दूकें थीं।

इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं था कि यह हुजूम बोलशेविकों का था। पेत्रोग्राद गैरीसन बोलशेविकवादी थे। मोर्चे से आने वाली प्रत्येक खबर से यह पता चलता था कि खन्दकों के लोग तेज़ी से बायीं ओर बढ़ते जा रहे थे। पृथ्वी और शान्ति की क्षुधा तत्काल शान्ति के लिए आकुल थी।

करेंस्की, जो उस सच्चे लोकतान्त्रिक की भाँति सभी को प्रसन्न रखने की कोशिश कर रहा था, किसी को भी खुश करने में सफल नहीं रहा। उसका जनता से सम्पर्क टूट गया था। उस पर नीचे, ऊपर, बाहर, भीतर सभी ओर से हमले हो रहे थे और उसके पदासीन रह पाने की कुछ भी आशाएँ शेष नहीं रही थीं। जिन लोगों को उसके साथ रहना चाहिए था, वे अपनी पूरी ताकत से गुप्त रूप से उसके पतन की सोच रहे थे। और कुछ तो इसकी योजना भी बना रहे थे। मित्र-राष्ट्रों के सैनिक मिशन के वैयक्तिक सदस्य कार्निलोव<sup>3</sup> को मिली घोर असफलता के बावजूद अभी भी इस पुरानी मान्यता से चिपके हुए थे कि रूस को कोई अश्वारोही (सैनिक) ही बचा सकता है और वे लुक-छिपकर मिलते थे तथा केरेंस्की को बचाने की नहीं, उसके स्थान पर किसी और तानाशाह को बिटाने के बारे में विचार-विमर्श करते थे।

पुरानी व्यवस्था की गुप्त व शैतानी ताकतें दुर्व्यवस्था बढ़ाने के लिए जर्मन आक्रमणकारियों के साथ मिलकर साजिश रच रही थीं। इन सबसे ऊपर और दूर-दूर तक जनता की ईमानदार गुहार गूँज रही थी : "विश्व में शान्ति हो!" तथा "भूमि किसानों को मिले!" बोलशेविकों ने शान्ति और भूमि देने का वचन दिया। उन्होंने यह भी वादा किया कि विश्व के मज़दूरों को "एकजुट हो, युद्ध और पूँजीवादी शोषण को हमेशा-हमेशा के लिए खत्म कर देना

चाहिए।"

वे उस रात रूस के भविष्य के बारे में बड़े शानदार सपने देख रहे थे; बड़ी-बड़ी योजनाओं को बना रहे थे और वे इस बात से भी अनभिज्ञ नहीं थे कि उनके सपनों और योजनाओं का इस्तेमाल भविष्य में शेष विश्व द्वारा भी किया जायेगा। शायद आदर्श संरचना के रूप में, शायद केवल भयानक उदाहरण और त्रासद चेतानियों के रूप में।

यह एक ऐसी घड़ी थी, जिसमें यह पक्का विश्वास किये जाने की

वापस आ रहा है।"

तीसरे ने कहा, "वह रेडक्रॉस की एक नर्स के वेश में मोर्चे से भाग गया है।" इतना सुनते ही उसके सब साथी हँस पड़े।

तीन बजे में स्मोल्नी के लिए चल पड़ी।<sup>4</sup> ... हाल ही तक यह विशाल भवन जो एक निजी शिक्षणालय था और जहाँ पर रूसी अभिजात वर्ग की कोमल कलिकाएँ एकान्त में खिलती थीं, सहसा शस्त्रागार में बदल गया था, जिसमें बन्दूकों तथा बन्दूकधारी लोगों

बन्द दरवाज़ों को खोलने वाली थी। इस पर समिति की नीली मुहर लगी हुई थी। और उस रात रूसी किरच की ओर से सम्मान प्राप्त करने के लिए यही मुहर आदेशात्मक थी।

सवा तीन बजे थे जब हम महान रेड आर्क की छाया में रुके थे और अँधेरे स्कवेयर में बड़ी सावधानी से झाँक रहे थे। कुछ क्षण निस्तब्धता छायी रही तभी राइफलों की तीन गोलियों ने उस चुप्पी को तोड़ दिया। हम चुपचाप खड़े थे और बदले की गोलियों की प्रतीक्षा में

कोट का एक हेंगर लिये हुए सीढ़ियों से नीचे आया और दूसरे के हाथ में सौफ़े का कुशन था। तीसरे को केवल एक मोमबत्ती ही मिली थी। कमिसार ने उन्हें दरवाज़े पर रोक लिया।

उसने हाथ से बरजते हुए कहा, "नहीं, नहीं कामरेडों! तुम्हें यहाँ से कुछ भी नहीं ले जाना चाहिए!"

उसने उन नाविकों से इस तरह समझाने के ढंग से बातचीत की जैसे किसी बच्चे से की जाती है और बच्चों की भाँति उन्होंने अपना लूट का माल धर दिया। लेकिन एक व्यक्ति ने, जो एक सैनिक था और जिसने कम्बल ले लिया था, इसका विरोध किया।

उसने कहा, "किन्तु मुझे तो ठण्ड लग रही है।"

"मैं इसमें कुछ नहीं कर सकता हूँ... यदि तुम उसे ले जाओगे तो लोग कहेंगे कि हम यहाँ लूटमार करने आये हैं, जबकि हम यहाँ लूटमार करने नहीं बल्कि क्रान्ति करने आये हैं।"

उसी क्षण सीढ़ियों पर खड़खड़ाहट हुई और मैंने देखा कि अन्तरिम सरकार के सदस्य धीरे-धीरे नीचे आ रहे थे।

उनमें से कुछ अकड़कर और सिर ऊँचा किये चल रहे थे। कुछ मुड़ाये हुए और चिन्तित लग रहे थे। उस दिन की उत्सुकतापूर्ण प्रतीक्षा से हुई थकावट तथा क्रूर 'अवरोरा' की चंचल तोपों के अधीन गुजरी उस रात तथा एक के बाद दूसरे मन्त्रिमण्डलीय संकट के सप्ताह उनके लिए काफ़ी त्रासदायक साबित हुए थे।

मैं वहाँ चुपचाप बैठी थी और उनको जाते हुए देख रही थी और आश्चर्य कर रही थी कि इस रात के कार्य का अर्थ रूस और विश्व के भविष्य के लिए क्या होगा।

1. लेखिका ने 25 अक्टूबर 1917 को रूसी राजधानी पेत्रोग्राद (अब लेनिनग्राद) का उल्लेख किया है। नेवस्की प्रोस्पेक्ट शहर का मुख्य रास्ता है।
2. अन्तरिम सरकार पूँजीवादी और जर्मंदारों की सत्ता का राजनैतिक अंग था जिसकी स्थापना फ़रवरी 1917 की क्रान्ति के बाद की गयी थी और जिसने ज़ारशाही को उखाड़ फेंका था। सरकार का प्रमुख अलेक्जेंडर करेंस्की था।
3. जनरल कार्निलोव राजतन्त्रवादी था और जुलाई 1917 से कमाण्डर-इन-चीफ़। अगस्त में उसने एक क्रान्ति-विरोधिता का अभियान छेड़ा था ताकि सैनिक तानाशाही स्थापित की जा सके। बाद में वह रूस में क्रान्ति-विरोधी आयोजकों में से एक बन बैठा।
4. भूतपूर्व शाही निवास और अन्तरिम सरकार का कार्यालय आज इसे 'अर्मिताज' के नाम से जाना जाता है और यह विश्व का सबसे बड़ा कला, संस्कृति और ऐतिहासिक संग्रहालय है।
5. स्मोल्नी संस्थान अक्टूबर सशस्त्र विद्रोह का मुख्यालय था।

"क्रान्ति की झलकियाँ" से साभार



आवश्यकता थी कि मानव अभियान आगे बढ़ रहा है, और इसकी कोई परवाह नहीं कि इस रास्ते में किस परिवार में कितनी लोगों की जानें गयीं।

वापस आते हुए मैं पैलेस स्कवेयर होते हुए आयी। विण्टर पैलेस (शीत प्रासाद)<sup>4</sup> के सामने शक्तिशाली ग्रेनाइट शेफ्ट की छाया में चार बख्तरबन्द गाड़ियाँ खड़ी थीं, उनके तोपों की नली खिड़कियों की ओर थी। उनकी पुशतों पर चमकते हुए लाल झण्डे शायद अभी-अभी चित्रित किये गये थे और एक झण्डे पर बड़े अक्षरों में लिखा था 'सर्वहारा'। शायद, बीस मैकेनिकों और ड्राइवरों का झुण्ड तोपों और इंजनों की तत्काल कार्यवाई के लिए तैयार हो रहे थे। कभी-कभी कोई आदमी नट कसते-कसते सिर उठाकर इधर-उधर देख लेता था और स्थिति पर कुछ टिप्पणी करता भी जाता था। केरेंस्की के पते-ठिकाने के बारे में ही उस समय मुख्य रूप से बात हो रही थी।

पैलेस की ओर अपने रेंच से इशारा करते हुए उनमें से एक ने कहा - "अब वह यहाँ नहीं है। वह तो रातों-रात फ़िनलैंड भाग गया है।"

दूसरे ने निन्दात्मक भाव से कहा, "वह फ़िनलैंड नहीं भागा है। वह सेनाएँ लेने गया है तथा हमसे लड़ने के लिए

की गहमागहमी मची हुई थी।

बाहरी कार्यालय में हमें एक सुन्दर-सा लड़का मिला और वह हमारा नाम और अनुरोध पूछकर दूसरे कमरे में चला गया और वहाँ का दरवाज़ा बन्द कर दिया। हम उसे उत्सुकता से देखते रहे। उस दरवाज़े के पीछे वे लोग थे जो पेत्रोग्राद की घेरेबन्दी और उस पर कब्जे की रणनीति के बारे में दिशा-निर्देश दे रहे थे और इतनी कुशलता से इसका निर्देशन कर रहे थे कि आगे आने वाले दिनों में बोलशेविकों के शत्रु इस पर इसरार करते थे कि उनकी समिति में जर्मन हैं, क्योंकि रूसी लोग इतने निपुण संगठन को सँभालने में हरगिज दक्ष नहीं थे।

जब अन्दर का दरवाज़ा फिर खुला तो वही लड़का हाथ में पास लेकर फिर आया। मेरा पास स्केच-पैड से एक छोटा-सा पन्ना फाड़कर टाइप किया हुआ था, जिस पर 'पाँच' की संख्या लिखी हुई थी तथा मात्र इतना कहा गया था :

"मज़दूरों और सैनिक डिपुटियों की परिषद की सैनिक क्रान्तिकारी समिति कुमारी बेस्सी बीटी को समूचे शहर में निर्बाध रूप से आने-जाने की अनुमति देती है।"

कागज़ की यह छोटी-सी पुर्जी कई

थे किन्तु हमे केवल काँच के टूटने और सड़क पर उसके टुकड़े बिखर जाने की आवाज़ सुनाई दी।

अचानक एक नाविक अँधेरे से उभरकर सामने आकर खड़ा हुआ और बोला, "सब कुछ खत्म हो गया है, उन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया है।"

हम टूटे काँच के बिखरे टुकड़ों से भरे चौक को पार करके आगे बढ़े और बैरीकेडों पर चढ़कर उस दोपहर खड़े किये गये, जो विण्टर पैलेस के रक्षकों ने वहाँ खड़े किये थे और विजयी नाविकों तथा रेड गार्ड्समैन (लाल रक्षकों) के पीछे-पीछे मटमैले लाल पत्थर के बने विशाल भवन की ओर चल दिये।

अपने नीले मुहर लगे पासों के आधार पर उन्होंने हमें बिना कुछ पूछे अन्दर जाने की अनुमति दे दी। नाविकों के एक कमिसार ने हमें दीवार से लगी एक बेंच पर बैठने को कहा। नाविकों के एक झुण्ड ने परिषद-चैम्बर की ओर सीढ़ी लगा दी और अन्तरिम सरकार को गिरफ़्तार कर लिया।

... विजयी नाविकों की पुख्ता पंक्ति महल के बाहर-भीतर आ-जा रही थी। उस घड़ी ट्राफ़ियों और स्मारकों को एकत्र करने की इच्छा बड़ी प्रबल थी उनमें, किन्तु महल में ऐसा कुछ दिख ही नहीं रहा था। एक नाविक अपने हाथ में

# पूँजीपतियों की हड़ताल

## सत्यम

जब भी मजदूर या कर्मचारी "न्यूनतम" मजदूरी, सुरक्षित ढंग से जीने और काम करने या उत्पीड़न के विरोध जैसी अपनी जायज माँगों को लेकर हड़ताल करते हैं तो मालिकान और सरकार ही नहीं, अक्सर मध्यवर्ग के खाये-अघाये लोगों की भी त्योंरियाँ चढ़ जाती हैं। हड़तालों को देश के विकास में बाधक घोषित कर दिया जाता है और पूँजीपतियों का भोंपू मीडिया भी हड़तालों को बदनाम करने का कोई मौका नहीं गँवाता। हड़ताल करने वालों को अक्सर ब्लैकमेलिंग करने वाला कहा जाता है, कि वे ज़ोर-ज़बर्दस्ती करके अपनी माँगें मनवाना चाहते हैं।

मजदूर अपनी बेहद न्यायसंगत माँगों को लेकर आन्दोलन पर थे तो मारुति सुजूकी के देशी मैनेजमेंट और जापानी मालिक दोनों बार-बार भारत और हरियाणा सरकार को धमकियाँ दे रहे थे कि वे अपना कारखाना नहीं और ले जायेंगे और अगर सरकार ने मजदूरों का आन्दोलन खत्म नहीं कराया तो विदेशी निवेशक भारत में निवेश करना बन्द कर देंगे। कहने की ज़रूरत नहीं कि हरियाणा की हुड्डा सरकार और केन्द्र की मनमोहन सरकार ने उनकी धमकियों के दबाव में मजदूर आन्दोलन को कुचलने में कम्पनी की हर सम्भव मदद की। इसी तरह जब उड़ीसा में वेदान्ता और पॉस्को ग्रुप की परियोजनाओं के लिए लाखों

भेजना, कर्ज देने से इंकार करना या फिर ऐसा करने की धमकी देना शामिल होता है। इसके साथ ही यह वादा भी होता है कि जब सरकार उनके मनमाफ़िक नीतिगत बदलाव कर देगी तो वे अपना रुख बदल लेंगे।

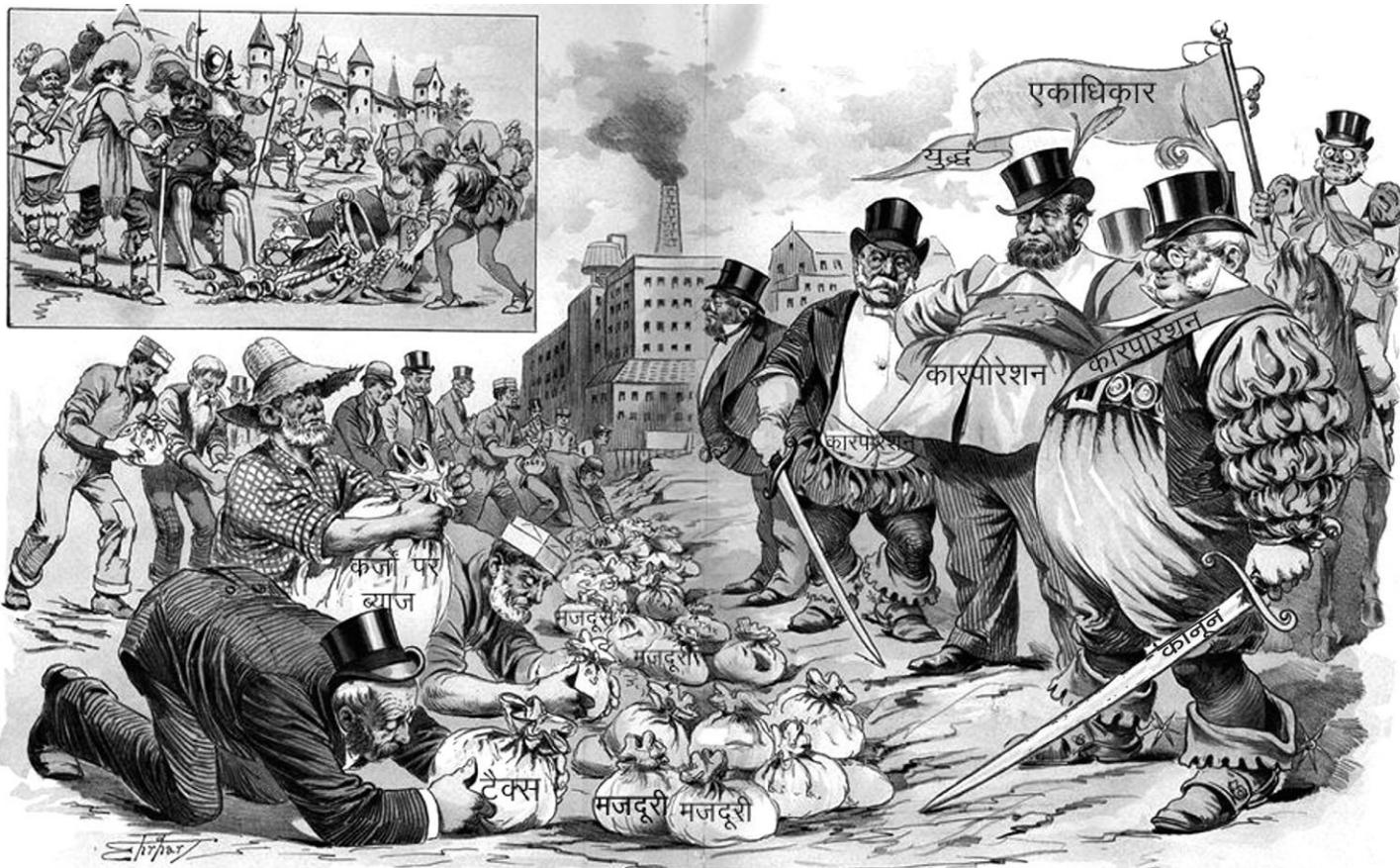
अमेरिका में एक बड़ी मैनुफैक्चरिंग कम्पनी ने पिछले दिनों धमकी दी कि जब तक सरकार टैक्सों में कटौती नहीं करेगी और पर्यावरण तथा श्रम कानूनों को ढीला नहीं बनायेगी तब तक वह देश में निवेश नहीं करेगी। एक शीर्षस्थ टेक्नोलॉजी फ़र्म के सीईओ ने बेशर्मी से घोषणा की कि एक विदेशी 'टैक्स हैवेन' में छिपाकर रखे गये 18 अरब डॉलर तब तक वापस नहीं आयेंगे जब तक उसे

और इसके बदले में कॉरपोरेट के हक में व्यापार सौदे करता है, कॉरपोरेट टैक्सों में कटौतियाँ करता है और उन पर बन्दिशें लगाने वाले क़ानूनों को ढीला कर देता है। जनता से उगाहे गये टैक्सों के बल पर कॉरपोरेशनों को उनके "संकट" से उबारने के लिए अरबों डॉलर के बेलआउट पैकेज दिये जाते हैं जबकि उनके मालिक और आला अफ़सरों की अय्याशियों में कोई कमी नहीं आती है। विदेशों के 'टैक्स शेल्टरों' में जमा पूँजी को वापस लाने के लिए पिछले चुनाव में हिलेरी और ट्रम्प दोनों के बीच लुभावने ऑफ़र देने की होड़ मची हुई थी। कोई कॉरपोरेट टैक्स में और छूट देने के वादे कर रहा था तो कोई सज़ा या जुर्माने को

प्रोजेक्ट के ज़रिए दबाव डालकर नगर प्रशासन से करोड़ों डॉलर की टैक्स छूट हासिल की। दिवालिया होने के कगार पर पहुँचे प्रशासन ने ट्रम्प को उसके होटल में निवेश में के बदले अचल सम्पत्ति पर सभी टैक्सों से 40 वर्ष की छूट दे दी जो अमेरिका के लिए भी एक अभूतपूर्व क़दम था। इसके बाद भी न्यूयॉर्क में नये निवेश होना तब तक नहीं शुरू हुआ जब तक कि म्यूनिस्पल असिस्टेंस कॉरपोरेशन – जिसमें वॉल स्ट्रीट के बैंक भरे थे – ने ढेर सारे 'बिज़नेस-फ़्रेंडली' यानी उद्योगपतियों के लिए फ़ायदेमन्द फ़ैसले शहर प्रशासन पर थोप नहीं दिये।

अगर कभी सरकार का कोई नेता अतिउत्साह में आकर या नासमझी में ऐसी कोई बात बोल भी जाता है जिससे पूँजीपतियों के हितों पर चोट पहुँच सकती हो, तो उस पर इतना दबाव पड़ता है कि उसके चूँ बोलते देर नहीं लगती। 2014 में बराक ओबामा ने जोश में आकर कह दिया कि "बैंक अगर नहीं सुधरे तो उनकी री-स्ट्रक्चरिंग करनी पड़ सकती है।" अमेरिका में, जहाँ अधिकांश बड़े बैंक निजी पूँजीपतियों के हाथों में हैं, ऐसी बात कहना ईशानिन्दा से कम नहीं था। अगले ही दिन यह सफ़ाई देते-देते व्हाइट हाउस के प्रवक्ताओं के गले बैठ गये कि ऐसी किसी योजना पर सरकार विचार नहीं कर रही है।

मगर दूर क्यों जायें? पिछले दिसम्बर में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के मुँह से मुम्बई में यह बात निकल गयी कि शेयर बाजार के लोग कम टैक्स देते हैं। तुरन्त यह चर्चा शुरू हो गयी कि क्या सरकार कैपिटल गेन्स टैक्स बढ़ायेगी; क्या शेयर बाजार औंधे मुँह गिरेगा! 24 घंटे में ही अमीर आकाओं की नाराज़गी के डर से मोदी-जेटली के हाथ-पाँव फूल गये और अगले ही दिन वित्त मंत्री सफ़ाई देने लगे कि लोग मोदी जी की बात को तोड़ मरोड़कर पेश कर रहे हैं। हमारा कैपिटल गेन्स पर टैक्स बढ़ाने का कतई कोई इरादा नहीं है। दरअसल, आयकर की अधिकतम दर कहने के लिए तो 30% है लेकिन इसके ना देने के उपाय भी आयकर कानून में ही मौजूद हैं। असल में अमीर लोगों की मुख्य आय वेतन से नहीं होती बल्कि उनकी सम्पत्ति पर पूँजीगत लाभ (कैपिटल गेन्स) या लाभांश से आती है। लाभांश पर मात्र 10 या 15% ही टैक्स लगता है। कैपिटल गेन्स का मतलब है शेयर, बांड्स या संपत्ति बेचने से प्राप्त लाभा। एक साल के पहले बेचने से प्राप्त लाभ पर मात्र 15% टैक्स लगता है और एक साल के बाद कोई टैक्स नहीं। शेयर मार्किट से बाहर शेयरों पर दीर्घावधि लाभ हो तो टैक्स 10% है। दीर्घावधि म्यूचुअल फंड पर भी सिर्फ 10% ही टैक्स है। यानी अमीर लोगों की असली आय पर टैक्स शून्य या बहुत कम है। अब ऐसे में मोदी की इस नासमझीभरी टिप्पणी पर उन्हें अपने आकाओं से कितनी फटकार पड़ी होगी, (पेज 14 पर जारी)



## सामन्ती काल के लुटेरे सरदारों की जगह अब पूँजी के लुटेरे सरदारों ने ले ली है!

उन्हें आतंकवादी, "माओवादी" आदि घोषित कर दिया जाता है। लेकिन कम ही लोगों को इस बात का इल्म होगा कि खुद पूँजीपति वर्ग लगातार अपनी माँगें मनवाने के लिए ऐसे हथकण्डे अपनाता है जिन्हें निश्चित ही ब्लैकमेलिंग और ज़ोर-ज़बर्दस्ती कहा जायेगा।

वैसे तो बुर्जुआ सरकारें पूँजीपति वर्ग की मैनेजिंग कमेटी की ही भूमिका निभाती हैं लेकिन बुर्जुआ व्यवस्था के दूरगामी हितों को ध्यान में रखकर या चुनावी मजबूरियों के चलते अगर राज्यसत्ता पूँजीपतियों के मनमाफ़िक क़दम नहीं उठाती तो पूँजीपति सरकार की बाँह मरोड़कर अपने काम कराने के लिए तरह-तरह के हथकण्डे अपनाते हैं। सरकारों पर दबाव डालने के लिए निवेश या उत्पादन रोक देना, या रोक देने की धमकी देना सबसे बड़े हथकण्डा होता है। दूसरे शब्दों में कहें, तो पूँजीपति हड़ताल या हड़ताल की धमकी से अपना काम कराते हैं।

पाँच-छह साल पहले जब मानेसर (गुडगाँव) में मारुति सुजूकी के हज़ारों

किसानों को उजाड़कर जमीन हड़पने के विरोध में वहाँ के आदिवासी और किसान एकजुट होकर लड़ रहे थे तो ये कम्पनियाँ बार-बार भारत से अपना निवेश हटा लेने की धमकियाँ दे रही थीं। इस ब्लैकमेलिंग की निन्दा करने के बजाय पूरा मीडिया एक सुर से यह बताने में लगा हुआ था कि आन्दोलनों के कारण भारत पर निवेश खो देने का कितना बड़ा खतरा मँडरा रहा है। पश्चिम बंगाल के सिंगूर में टाटा और लालगढ़ के इलाके में जिन्दल के कारखानों के विरोध में जनान्दोलनों के जवाब में भी टाटा और जिन्दल ऐसी ही धमकियाँ दे रहे थे।

ये महज चन्द उदाहरण नहीं है बल्कि हर पूँजीवादी देश में चलने वाली एक आम रिवायत है। पूँजीपति लगातार निवेश, नौकरियाँ, कर्ज, माल और सेवाएँ – यानी वे संसाधन जिन पर समाज की निर्भरता है – रोककर सरकारों पर दबाव बनाते रहते हैं और लोगों की कीमत पर अपने मुनाफ़े के लिए काम करवाते हैं। उनके हथकण्डों में छँटनी करना, नौकरियाँ और पैसे दूसरे देशों में

"उचित रेट" नहीं मिलेगा। यह वैसे ही है जैसे कोई चोर कहे कि वह चोरी का माल तब तक वापस नहीं करेगा जब तक उसे "उचित कमीशन" नहीं मिलेगा। लेकिन इस बात पर उस सीईओ के पिछवाड़े दो डण्डे जमाकर उसे जेल में डालने के बजाय ओबामा सरकार ने उसकी आवभगत की और उसकी माँगों पर विचार करके कार्रवाई करने का भरोसा दिलाया। अमेरिका में खरबों डॉलर के सुरक्षित भंडार होने के बावजूद बैंक और कॉरपोरेशन सामूहिक तौर पर दबाव डालने के लिए सरकार को कर्ज देने या बेरोज़गारी दूर करने के लिए नई भरती करने से इंकार कर देते हैं। जब उनकी मर्जी के अनुसार क़ानूनों में बदलाव कर दिये जाते हैं या उन्हें रियायतें मिल जाती हैं तब वे कर्ज देना या भरती करना शुरू करते हैं। इसके जवाब में अमेरिका की दोनों बड़ी पार्टियों के नेता पूँजीपतियों के हित में "सुधारों" को ज़ोर-शोर से लागू करके निवेश बढ़ाने की कोशिश करते हैं। राष्ट्रपति कम्पनियों के आगे गिड़गिड़ाता है कि वे नई नौकरियाँ दें (आखिर उसे चुनाव भी तो जीतना है!)

खत्म करने की बात कर रहा था।

सभी देशों में पूँजीवादी पार्टियों के नेता पूँजी की इस ताक़त को अच्छी तरह पहचानते हैं और इसका अपने लिए फ़ायदा उठाने और अपने आकाओं को नाराज़ होने से रोकने के लिए न केवल खुद कुछ भी करने को तैयार रहते हैं बल्कि जनता के संसाधनों को भी धड़ल्ले से उन पर लुटाते हैं। चुनाव प्रचार में अरबों-खरबों के चन्दे तो सरकारी नीति पर पूँजीपतियों की गिरफ़्त का सिर्फ़ एक पहलू है। असली ताक़त तो पूँजी के प्रवाह पर कॉरपोरेट जगत के एकाधिकार में निहित होती है।

नये अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प की पिछली कारगुजारियों की हाल में हुई एक स्वतंत्र जाँच में इस बात का एक ज्वलन्त उदाहरण सामने आया कि पूँजी के मालिक किस तरह सरकारी नीतियों को बदलवाते हैं। 1970 के दशक के उत्तरार्द्ध में, न्यूयॉर्क शहर ज़बर्दस्त वित्तीय संकट में फँसा था और वहाँ सारा निवेश लगभग ठप्प हो गया था। रीयल एस्टेट के बड़े कारोबारी ट्रम्प ने मैनहट्टन इलाके में एक बड़े होटल